पूजाञ्जलि

[संस्कृत पूजाओं का अनुपम सार्थ संग्रह]

संकलन

सौभाग्यमल जैन काला

सआदत गंज लखनऊ (उ. प्र.)

सम्पादन

पं. विमलकुमार जैन सोंरया

एम० ए०, शास्त्री, प्रतिष्ठाचार्य

सम्पादक-वीतराग वाणी 'मासिक' टीकमगढ़ (म प्र.)

प्रकाशक

श्री शांति सौभाग्य ग्रंथ प्रकाशन

३६५/७६ सआदत गंज लखनऊ (उ० प्र०)

प्रथमावृत्ति	श्री महावीर जयंती	मूल्य
५००	१९९१	स्वाध्याय

पूजाञ्जलि

❀

संकलन–
सौभाग्यमल जैन काला

❀

सम्पादन–
पं विमलकुमार जैन सोरया

❀

प्रथमावृत्ति— ५००

❀

महावीर जयती–१९९१

❀

मूल्य–स्वाध्याय

❀

मुद्रक—
वर्धमान कुमार जैन सोरया
वर्धमान मुद्रणालय टीकमगढ़ [म. प्र]

 2592

प्रकाशक–
श्री शान्ति सौभाग्य ग्रंथ प्रकाशन
३६४/७६ सआदत गंज लखनऊ–३

श्री सौभाग्यमलजी जैन काला
सआदतगंज लखनऊ का अनुकरणीय परिचय

भारत अनादिकाल से आध्यात्मिक देश रहा है और श्रमण संस्कृति सदैव यहाँ फलती फूलती रही है। राजस्थान भारत का गौरवशाली प्रदेश रहा है। यहाँ की ऐतिहासिक नगरी दूदू मे श्रीमान् राजमलजी काला एक सरल प्रकृति के प्रतिभाशाली, प्रतिष्ठित, धर्मनिष्ठ श्रेष्ठि थे।

माघ सुदी ५ स. १६७५ को एक उत्तम घड़ी में द्वितीय पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई। बालक का जन्म होते ही घर की ऐश्वर्यता शुक्ल पक्ष के चन्द्रमा के समान बढ़ने लगी। परिणामत पिता ने अपने पुत्र का नाम सौभाग्यमल रखा। आपकी माताजी का नाम श्रीमती गुलाब बाई था। जो स्वभाव से उग्र थीं परन्तु नारी मर्यादा, दानशीलता, धर्म परायणता मे अग्रणी थी। पिताश्री राजाओ के कोठारी (मोदी जी) थे। सम्वत् १६७० में मोदीखाना छोडकर भोजपुर में दीवान (कामदार) हो गए। स्कूल के अभाव के कारण अपने बड़े भाई श्री ज्ञानचन्द जी काला जो एक कुशल व्यवसायी होने के साथ एक योग्य प्रतिभाशाली विद्वान लेखक भी थे वह सन १६३२ मे लखनऊ अध्यनार्थ ले आये और आप हिन्दी उर्दू की आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करने लगे। यहाँ ब्र० शीतल-प्रसाद जी एवं श्री अजितप्रसाद जी एडवोकेट का आप पर अपार स्नेह था।

आरम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के उपरान्त लागत में मन कम और ईमानदारी तथा सत्यता बहुत मात्रा में लगाकर कठोर परिश्रम व लगन से व्यापार प्रारम्भ किया। किराना का व्यापार था। वहऐसा व्यापार था जिसमें मिलावट की कभी

गु जाहृशथी। लेकिन आपको तो जन्म से ही न्याय और उत्तम विमल विचार का गुण प्राप्त हुआ था। अत. आपने अपने व्यापार मे नियम बना लिया था कि–

(१) उधार देकर या कर्ज देकर किसी से व्याज नहीं लेंगे।

(२) यदि कोई अपना पैसा लेने आवे और भूल से कम धन मागे तो उसे याद दिलाकर पूरा पैसा देना।

(३) किसी का माल तुलाकर अधिक आ जाने पर अधिक भाग वापिस करना तथा निश्चित से अधिक कीमत वा माल आने पर वापस करना या बढ़ाकर मूल्य देना।

(४) निश्चित की गई गुणवत्ता से अधिक गुणवत्ता का माल आ जाने पर उसके अनुसार ही पुन' निर्धारित करके मूल्य चुकाना।

(५) बिना धरोहर रखे पड़ौसी या परिचित को आवश्यकतानुसार धन से सहायता देना। और प्रयास करना कि उससे धनवापिस मागा न जाए। जब वह वापिस करे तब लिया जाए।

व्यापार के अतिरिक्त सामाजिक व्यवहार मे आप उदारता पूर्वक सहायता के कार्य करते रहते हैं जैसे कि–

(१) स्वय नाव मे बैठकर दूर दराज के स्थानो पर बाढ के कष्ट मे घिरे लोगो को भोजन आदि वितरित करना।

(२) शीतकाल मे निर्धनो, विकलागो आदि को गरम वस्त्रों से सहायता करना।

३० वर्ष की उम्र मे आपका विवाह सुयोग्य, धर्म परायण श्रीमती सौ शान्तिदेवी के साथ हुआ पत्नि का सुयोग्य

मिलते ही आपकी श्रीवृद्धि में चार चांद लग गए। परम भाग्य शाली नारी का प्रवेश ही किसी घर को धन ऐश्वर्य प्रतिष्ठा से पूरित कर देता है और होनहार बिरवान के होत चीकनेपात की उक्ति चरितार्थ कर देता है। अपनी इन निष्ठा पूर्ण प्रवृत्तियो के कारण आपकी फर्म राजमल केशरीमल की प्रतिष्ठा व्यापक रुप मे बढ़ी।

कुछ समय बाद आपके बड़े भाई स्व० ज्ञानचन्दजी भी इसी व्यवसाय मे शामिल हो गए और कार्य व्यापार अपनी प्रगति व प्रतिष्ठा के नए बिन्दुओ को पार करता चला गया। इसका परिणाम यह हुआ कि वर्तमान समय मे लखनऊ किराना कम्पनी, पवन ट्रेडर्स, विशाल ट्रैडर्स, भारत किराना स्टोर, पंचशील ट्रेडर्स के नाम से किराना, जड़ी बूटी मसाले, सूखे मेवे व यूनानी दवाओ का व्यापार चल रहा है।

सौभाग्यमल जी द्वारा अर्जित प्रतिष्ठा के कारण ही 'जैन आयुर्वेदिक्स' के नाम से विशुद्ध आयुर्वेदिक औषधियों की निर्माण शाला अपनी शुद्धता के लिए प्रसिद्ध है। उक्त समस्त व्यापारिक संस्थान धर्म विरुद्ध घृणित कार्य न करने के संकल्प का पालन करते हुए प्रगति व प्रतिष्ठा और पुण्य अर्जित कर रहे है। सौभाग्यमल जी की धर्म निष्ठा के और सत्य निष्ठा के कारण ही आज से १२ वर्ष पूर्व लखनऊ किराना नाम की रजत जयन्ती मनाकर लखनऊ की समाज ने कपनी को शुद्धता एव प्रमाणिकता के लिए सम्मानित किया था। उल्लेखनीय है कि इस लाइन मे यह अपने प्रकार का विशिष्ट व प्रथम आयोजन था। जिसके द्वारा आज के भ्रष्टा-चार भरे समयमे ईमानदारी व नैतिकता के मूल्यों का सम्मान कियागया था आपने अपने पुत्रों और पुत्रियोको शिक्षा दिलाने

में विशेष रुचि ली। उनके बड़े पुत्र श्री राकेशकुमार जैन इन्टर, श्री जागेश कुमार, श्री विजयकुमार व श्री प्रमेशकुमार तथा पुत्री श्रीमती मंजु जैन ने स्नातक स्तर तक की शिक्षा प्राप्त कर योग्य पिता के योग्य पुत्र बनने का सुयोग्य प्राप्त किया है।

शिक्षा मे श्री सौभाग्यमल जी की गहरी रुचि के कारण ही उनके पास पुस्तको का एक वृहत संग्रह उपलब्ध है। वह निर्धन छात्रो को शिक्षा पाने के लिए आर्थिक सहायता एव पुस्तको की व्यवस्था भी करते हैं।

आप निरन्तर संस्कृति धर्म और समाज की सेवा मे तल्लीन रहते हैं। गत १६ वर्ष से व्यवसाय सम्बन्धी कार्यों से अवकाश लेकर समाज धर्म के सेवा कार्य मे लगे हुए हैं। धर्म सेवा मे भी वह सबको साथ लेकर चलना अपना धर्म मानते हैं। वह सदा यह विचार करते रहते हैं कि दिगम्बर जैन विचार प्रवाह के अक्षुण्ण बने रहने के लिए क्या करना उचित है इसके लिए धार्मिक अनुष्ठान आयोजित कर श्रमणो साधुओ विद्वानो की सेवा करना तथा तीर्थ यात्राये करना उन्हें विशेष प्रिय है। धर्म कार्य के लिए दान करना तो जैसे उनकी दिनचर्या का ही एक भाग है।

आवश्यकता पर प्रगट व गुप्त दान करना भी वे उचित मानते हैं। वर्ष मे लगभग ४ माह तीर्थ यात्राओ और शेष समय धर्म चर्चा, दान एवं तीर्थ सेवा, समाज सेवा एवं धर्म सम्बन्धी अन्य कार्यों में व्यतीत करते हैं। उनकी धर्म चिन्तना का साकार स्वरुप ही 'ऋषभायण' महाकाव्य का प्रकाशन है।

आपके मन मे यह धर्म का विचार निरन्तर क्रियाशील रहता है। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य एवं अपरि

ग्रह उनके दैनिक क्रिया कलाप का अंग बन गए हैं। ५० वर्ष पूर्व सन् १६४१ में आपने मुनि श्री पार्श्व सागर जी महाराज के ससघ का चातुर्मास सआदत गंज लखनऊ मे कराने मे आपने विशेष सहयोग किया इसी समय आपने किसी भी मांसाहार भोज मे सम्मिलित न होने का संकल्प लिया था जिसे वह निष्ठा से निभा रहे है। वर्ष १६७५ में उन्होने व्यवसाय से अवकाश लेकर सारा समय धर्म चिन्तन हेतु समर्पित कर दिया। इसी वर्ष उन्होने आचार्य श्री १०८ पार्श्वसागर जी महाराज के सम्मुख परिग्रह प्रमाण व्रत, आजीवन ब्रम्हचर्य व्रत तथा चर्म त्याग व्रत ग्रहण किये। वर्ष १६७५ में ही उन्होंने लखनऊ नगर मे पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन औषधालय की स्थापना कराने में अनेक विधि से सहयोग किया।

लखनऊ नगर में भगवान महावीर के २५०० वें निर्वाण महोत्सव के मनाए जाने के सम्बन्ध में १६७३ से १६-७५ तक सौभाग्यमल जी तन मन धन से धर्म सेवा मे लगे रहे। धर्म चक्र एवं रथयात्रा के नगर भ्रमण की व्यवस्था मे उनकी कर्मठता का ही परिणाम था। उन्होंने सआदतगंज के जैन मन्दिर के प्रागण मे समाज के द्वारा कीर्ति स्तम्भ स्थापित करवाया तथा समय समय पर सिद्धचक्र विधान आदि सम्पन्न कराने में विशेष सहयोग दिया।

धर्म सम्बन्धी यात्रायें करने, उनकी व्यवस्था करने और समाज को उसमे सम्मिलित कराने में श्री सौभाग्यमल जी विशेष प्रयत्न करते हैं। आपने सर्व प्रथम सन १६६५ ई० मे संघ सहित बुन्देलखण्ड की तीर्थ यात्रा की थी। १६६७ में

आप संघ के साथ दक्षिण-तीर्थों की यात्रा पर गए। १६७५ मे आप संघ लेकर श्री अहिच्छेत्र, पार्श्वनाथ, बहलनाजी व हस्तिनापुर की यात्रा पर गए। वर्ष १६८१ में आप संघ लेकर दूसरी बार दक्षिण की यात्रा पर गए। अगले वर्ष आपने संघ लेकर अग्रणी होकर दक्षिण तीर्थों की यात्रा की। सन १६८४ में लखनऊ के जैन बाग में पंचकल्याणक प्रतिष्ठा के अव-सर पर आपने सआदतगंज की ओर से यात्रियों के लाने ले जाने के लिए बस व्यवस्था एव भोजनादि का प्रबध किया गया। खर्च के साथ उसका सम्पूर्ण प्रबन्ध भी आपने ही किया था।

आपका सहयोग सदा समाज के साथ रहता है वर्ष १६८५ मे जब श्री मां कौशल जी के प्रवास का प्रश्न उठा तो स्वयं सौभाग्यमल जी श्री मा कौशल जी को लिवाकर लख-नऊ लाये और सौभाग्यमल जी व उनकी धर्म पत्नि श्रीमती शान्तिदेवी जी ने प्रवास काल मे श्री मां कौशल जी की सेवा की। श्री सौभाग्य मल जी भारत में तो समाज की सेवा तो करते ही है इंग्लैण्ड में धर्म प्रभावना हेतु आयोजित पंच-कल्याणक प्रतिष्ठा मे भाग लेने वे सपत्नीक इंग्लैण्ड गए व समस्त तीर्थों की वदना के पश्चात उन्होने मध्यलोक के ४५८ जिनालयो की परोक्ष वन्दन भावना से वृहद इन्द्रध्वज महा-मण्डल विधान की आराधना की। इंग्लण्ड से वापस आने पर श्रावस्ती तीर्थ मेले के समय समाज द्वारा सौभाग्यल जी को सम्मानित किया गया। इस अवसर पर आपने ऊनी वस्त्र उतार कर जीवन पर्यन्त हेतु ऊन का त्याग कर दिया और केवल सीमित वस्त्रो के प्रयोग का व्रत धारण कर लिया। इस प्रकार वह निरन्तर धर्म मार्ग पर आगे बढ़ते जा रहे हैं।

धर्म कार्यों के लिए सौभाग्यमल जी सदा दान करते रहते हैं धर्म बुद्धि से जीवन यापन करने के कारण परिवार के सभी सदस्य दान व्यवस्था के लिए तैयार रहते हैं निशुल्क चिकित्सालय चलाने हेतु वे दान देते हैं। अपने धर्म कार्यों की लगन एवं धर्म निष्ठापूर्ण विचारो के व धर्ममय जीवन के कारण ही श्री सौभाग्य मल जी को धर्म सम्बन्धी अनेक दायित्व सौंपे गए हैं संक्षेप में वे जो दायित्व निभा रहे है उनका विवरण इस प्रकार है—

(१) मंत्री- जीव दया संस्था,
(२) अध्यक्ष- श्री दिगम्बर जैन तीर्थ क्षेत्र कमेटी श्रावस्ती,
(३) ट्रस्टी- भारतीय जैन मिलन हास्पिटल सरधना
(४) परम संरक्षक दिगम्बर जैन युवा परिषद्,
(५) संरक्षक- अखिल विश्व जैन मिशन,
(६) परम सरक्षक- भगवान महावीर वाणी, अहिंसा, शाकाहार, वीतराग वाणी मासिक।
(७) संरक्षक जैन धर्म प्रवर्द्धनी सभा लखनऊ (पूर्व अध्यक्ष)
(८) संरक्षक- श्री पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन मन्दिर समिति सआदत गंज लखनऊ (पूर्व अध्यक्ष)
(९) वरिष्ठ सरक्षक- ज्ञानकीर्ति प्रकाशन
(१०) संस्थापक- शान्ति सौभाग्य ग्रंथमाला प्रकाशन सआदत गंज लखनऊ

जैन धर्म के प्रचार प्रसार के लिए श्री सौभाग्यमल जी की हृदय की भावना और लगन ने ही उन्हें धार्मिक साहित्य छापने और बटवाने की प्रेरणा प्रदान की। वे स्वयं भी अनेक पुस्तके छपवाकर उन्हें निःशुल्क वितरित कर चुके हैं साथ

ही दूसरे प्रकाशनो से पुस्तके मंगवाकर उन्हें भी निःशुल्क-वितरित करते हैं। उनके द्वारा छपवाई व वितरत की गई पुस्तको की सूची देना यहां समीचीन है।

(१) मेरी आराधना
(२) णमोकार महामंत्र
(३) सरल जैन विवाह विधान
(४) भक्तामर (हिन्दी)
(५) भगवान आदिनाथ अयोध्या तीर्थ पूजा
(६) भगवान सम्भवनाथ श्रावस्ती तीर्थ पूजा
(७) भगवान महावीर वैशाली तीर्थ पूजा
(८) भगवान पार्श्वनाथ अहिक्षेत्र पूजा
(९) भगवान बाहुबली श्रवण बेलगोल पूजा
(१०) भगवान आदिनाथ (आदि कृषि शिक्षक)
(११) कुल दीपक (१२) नारी का स्थान
(१३) सुगध दशमी धूपाजली अघ विली
(१४) णमोकार मंत्र की पूजा (१५) जीवन कला
(१६) स्तोत्राराधन (१७) आगम आलोक
(१८) पूजाजलि (१९) वीरशासन
(२०) ऋषभायण— यह इस माला का नवीनतम पुष्प है।

वास्तव मे ऋषभायण की रचना की कल्पना श्री सौभाग्यमल जी के मन मे ही उदित हुई। उन्होंने इसकी रचना के लिए कल्पना से लेकर कथावस्तु तक सजोकर कवि को खोजकर इस ग्रंथ का प्रणयन कराया और फिर इसे प्रकाशित कराकर जन-जन तक पहुँचाने में भी उसी प्रकार तन मन से सम्पूर्ण सहयोग किया।

वर्ष १९८९ में दूदू जिला जयपुर (राजस्थान) मे उनके

द्वारा आयोजित श्री इन्द्रध्वज महामण्डल विधान के अवसर पर 'ऋषभायण' का विमोचन किया गया व इस अवसर पर श्री भारतवर्षीय दिगम्बर जैन महासभा के पदाधिकारियो की उपस्थिति में महासभाध्यक्ष द्वारा समस्त समाज की अनुमोदना से महासभा द्वारा श्री सौभाग्यमल जी को धर्म सेवा कार्यों के लिए "जिनायतन भक्त" की उपाधि और राजस्थानी पचरंगवध बाजा से विभूषित किया गया साथ ही श्रावस्ती तीर्थ क्षेत्र कमेटी, अयोध्या तीर्थ क्षेत्र कमेटी, सआदत गज लखनऊ समिति दूदू जैन समाज द्वारा अभिनन्दन किया गया।

इस प्रकार जैन समाज ने उनके प्रति व महाकाव्य के प्रकाश में लाने के महान कार्य के प्रति अपनी कृतज्ञता प्रगट की। इस अवसर पर श्री सौभाग्यमल जी ने दूदू मे अभूतपूर्व रथयात्रा की व्यवस्था एवं भक्तो की भोजनादि की व्यवस्था अपनी ओर से करके व दूदू के जैन मन्दिर मे भगवान आदिनाथ की रजत प्रतिमा स्थापित कराकर अपनी सेवा भावना का परिचय दिया।

ऋषभायण के रूप मे श्री सौभाग्यमल जी की हार्दिक भावनाओं को वाणी मिली है प्रभु से प्रार्थना है कि वह वाणी ससार भर के समस्त प्राणियो को धर्म सेवा की प्रेरणा देने मे समर्थ हो। श्री सौभाग्यमल जी के उन्नत व्यक्तित्व महान कृतित्व का अभिनन्दन उनकी उपस्थिति मे प्रथम शती जन्मोत्सव के रूप मे मनाकर धन्य हो ऐसी वीरप्रभू से प्रार्थना है।

—डा० अजय अनुपम

रेती स्ट्रीट मुरादाबाद

प्रकाशकीय

हमारे पूज्य पूर्वाचार्यों की वाणी परम्परा से आगमवाणी के रूप मे स्वीकार की गई है । और उनके मुख कमल से प्रसूत वाणी के पठन पाठन से हमारे परिणामो मे विशुद्धि की प्रचुरता आती है। वर्तमान समय मे हमारे प्रबुद्ध कवियो द्वारा रचित हिन्दी पूजाओं का पाठ भगवान जिनेन्द्र प्रभू के पादमूल मे भक्तगण करते हुए श्रावक के षट कर्त्तव्यो मे से प्रथम कर्त्तव्य का पालन करते आ रहे है । और अपनी आत्मा को मोक्षमार्ग पर ले जाने का हेतु बना रहे है । हमारे आगम आचार्यों ने जिस भक्ति भाव से संस्कृत भाषाओं मे जिनेन्द्र पूजाओं की रचना की वह हमारे अन्त परिणामो की विशुद्धि के लिए तो एक सबल कारण के रूप मे ही है ।

आचार्यों की प्रणीत संस्कृत पूजाओ का जब हम हिन्दी अर्थ सहित अभिबोध पाते हैं तो हमारा मन जिन भगवान की आराधना में प्रगाढता के साथ लगता है । भव्यगण श्री जिन भगवान की अत्यन्त विशुद्धि और निर्मल परिणामो से आराधना कर मोक्ष प्राप्त करने की पात्रता प्राप्त कर सके इसी भावना से मै संस्कृत पूजाओ का दुर्लभ संग्रह विशेष जिनाभिषेक विधि के साथ प्रकाशित कर रहा हू । पूजा के प्रत्येक छन्द के नीचे हिन्दी अर्थ प्रकाशित किया गया है जिससे संस्कृत अनभिज्ञ जन हिन्दी अर्थ पाठ कर आचार्यों की भक्ति से अपने आपको अनुप्राणित कर सके ।

अनेक सस्कृत पद्यो का हिन्दी अर्थ लिखकर शुद्धता पूर्वक संस्कृत पूजाओ का मुद्रित करने का पूरा श्रेय श्रीमान् पं विमलकुमारजी जैन सोरया एम.ए शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य टीकम गढ़ को है जिन्होने हस्तलिखित संस्कृत पूजा ग्रन्थो से इसका

मिलान कर संशोधन एवं शुद्धिता पूर्वक इसका प्रकाशन किया। संस्कृत पूजाओ के पठन पाठन से हमारे परिणामों में विशेष विशुद्धि तो होती ही है पूर्वाचार्यों की परम्परागत वाणी की भी साश्वतता बनी रहती है। जो दीर्घ काल तक अनेक भव्यो का उपकार करती है। चिरंजीव श्री बर्द्धमानकुमार जी जैन सोंरया एम. एस-सी, बी एड. संचालक बर्द्धमान मुद्रणालय टीकमगढ़ को साधुवाद देता हूं जिन्होने पुस्तक को रोचक और शुद्ध मुद्रण मे हमारी भावनाओ को साकारता दी।

आशा है भगवान जिनेन्द्रदेव की भक्ति में यह पुस्तक लोकोपयोगी होकर मुक्ति की साधक बनेगी। इन्हीं भावनाओ के साथ आचार्यों द्वारा प्रणीत संस्कृत पूजाओ के हिन्दी अर्थ सहित प्रकाशन का यह सर्व प्रथम उपहार आज आपको भेंट करते हुए हमे अपार हर्ष हो रहा है।

—सौभाग्यमल जैन काला

सआदत गंज लखनऊ

प्रस्तावना

देवपूजा गुरुपास्तिः स्वाध्याय संयमस्तप. ।
दानं चेति गृहस्थानां षट्कर्माणि दिने दिने ॥

श्रावक के दैनिक षट् कर्त्तव्यो में सर्वप्रथम कर्त्तव्य भगवान जिनेन्द्रदेव की पूजा करना है। राग प्रचुर होने के कारण गृहस्थो के लिए आचार्यों ने जिनेन्द्र पूजा को प्रधान धर्म कहा है। यद्यपि इसमे पचपरमेष्ठी की प्रतिमाओ का आश्रय होता है परन्तु पूजा करने वाले के भाव प्रधान हैं। भावो की प्रधानता के कारण पूजक की असख्यात गुणी पापकर्म की निर्जरा होती है और असंख्यात गुणा शुभ कर्म का उदय होता है।

श्री बनारसी दास जी ने रयणसार नाटक में पूजा की महत्ता दर्शाते हुए कहा है .

लोपे दुरित हरै दु ख संकट आपे रोग रहित नितदेह ।
पुण्य भण्डार भरै यश प्रकटै मुकति पथ सो करे सनेह ॥
रचै सुहाग देय शोभा जग परभव पहुँचावत सुरगेह ।
कुगति वध दलमलहि 'बनारसि' वीतराग पूजा फल ऐह ॥

लोक में चतुर्निकाय के जीवो मे मनुष्य और देव ही जिनेन्द्र की भक्ति करके उत्तम सुख रुप मोक्ष की सिद्धि को प्राप्त करते हैं। प्रगाढ आस्था के साथ जिनेन्द्र भगवान की जो स्तुति की जाती है वह ही जिनेन्द प्रभू की पूजा है। भावो की विशुद्धि पूर्वक जिनेन्द्र प्रभू के गुणो मे मन की जो तन्मयता होती है वह ही आत्म सिद्धि साधक श्रावक की सम्यक पूजा है। श्रावक को पूजा अष्ट द्रव्य पूर्वक ही करना चाहिए जबकि महाव्रती के लिए भावपूजा ही करना चाहिए मन जब पाचो इन्द्रियो के साथ एक मेक होकर अत्यन्त

विशुद्धि पूर्वक जिनेन्द्र प्रभू के चरणो में अनुराधक हो जाता है तब उसकी उत्कृष्ठ भक्ति अनीचा कही जाती है।

नेमिचन्द्र सिद्धांतचक्रवर्ति ने महान आगम ग्रंथ गोम्मट सार मे आठ प्रकार की पूजा भक्ति का निर्देश किया है यह आठ प्रकार की भक्ति भावो की विशुद्धि और तन्मयता पर आधारित है। इसमें पूजक भावो की विशुद्धता के साथ मन को जिनेन्द्र के गुणाराधन मे लगाता है। भावो की स्थिति के आधार पर ही इसके आठ भेद कहे गये हैं।

जिनेन्द्र प्रभू के दर्शनो की भावना साकार रुप में चरितार्थ होना प्रथम जिनेन्द्र पूजा है। भाव और प्रवृत्ति दोनों का चरितार्थ होना ही पूजा की साकारता है। जिनेन्द्र भगवान के पादमूल मे पहुँचकर अष्टांग नमस्कार पूर्वक त्रय प्रदक्षिणा देना और स्तोत्राराधन करना द्वितीय प्रकार की पूजा है प्रथम प्रकार की पूजा मे जितने शुभ कर्मों का आस्रव होता है असंख्यात गुणा शुभाश्रव द्वितीय प्रकार की पूजा मे कहा है। इसी प्रकार उत्तरोत्तर आगे आगे की पूजाओं मे पीछे पीछे की पूजाओ की अपेक्षा असंख्यात असंख्यात गुणा शुभाश्रव होता है।

परिणामो की विशुद्धि पूर्वक जब पूजक के वीतराग भाव पूजा करते समय जितने क्षण के लिए बनते हैं उतने उतने समय सवरपूर्वक पापकर्मों की निर्जरा भी होती है। अष्ट द्रव्य अर्थात् जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प नैवेद्य, दीप, धूप फल को पवित्र जल से प्रक्षालित कर जिनेन्द्र प्रभू के मंगल मय अभिषेक के बाद उनके पादमूल मे खड़े होकर भक्ति पूर्वक पूजन करना तृतीय प्रकार की पूजा है। एक वस्त्र

पहिनकर कभी पूजा नहीं करना चाहिए। उत्तर या पूर्व खड़े होकर ही जिनेन्द्र प्रभू की पूजा करना चाहिए। वेदिका के सामने खड़े होकर पूजन करने से दीठि नाम का दोष या अतिचार लगता है।

पूजन करते समय हर्षित भाव से मनेन्द्रियो का प्रभू के गुणानुराग में अनुरक्त होना और सामान्य नृत्य ताल के साथ पूजन करने की प्रवृत्ति का स्वयमेव आचरित होना चौथे प्रकार की पूजा है। पाचवी प्रकार की पूजन मे पूजक पूज्य की पूजा करते हुए अपने चित्त को जिनेन्द्र प्रभू के गुणानुराग मे इतना लीन कर लेता है कि उसके पास मे अन्य कोई आकर दर्शन पूजन कर चला जाय फिर भी आये हुये श्रावक के प्रति उसको सुधि नही जाती। छटवी प्रकार की पूजा में भक्त जिनेन्द्र प्रभू की आराधना मे तन्मय होकर नृत्य करने लगता है नृत्य करते हुए यदि कदाचित वह वस्त्र रहित भी हो जाता है तो उसे भक्ति की तन्मयता मे अपने शरीर एवं वस्त्रो की सुधबुध भी नही रहती और निरन्तर आराधक के गुणो मे मन-इन्द्रिय पूवक उनकी भक्ति मे डूबा रहता है।

भक्ति की प्रगाढ़ता की ओर बढ़ता हुआ यदि उसके किसी अंग मे कदाचित सामान्य चोट लग जाये अथवा डास, मच्छर, ततैया जैसे जीव डंक या चोट की बाधा दें तो भी उसे वह अनुभूत नहीं करपाता ऐसी स्थिति पूर्वक भावों की गहराई से की जाने वाली पूजाराधना सातवीं प्रकार की पूजा है अन्तिम आठवीं प्रकार की पूजा अनीचा पूजा कहलाती है यह वह भक्ति है जिसमें भक्त की भावना भगवान के गुणानुराग में इतनी एकमेक हो जाती है कि कदाचित

उसके पैर मे कील भी आरपार चुभकर निकल जाये खून भी बहने लगे फिर भी भक्ति की तन्मयता में उसके मन मे इस घटित स्थिति का आभास भी न हो। इतनी प्रगाढता और विशुद्धि पर्वक आराधना की जो प्रवृत्ति है वह अनीचा नाम की आठवीं प्रकार की पूजा है।

ऐसी पूजा यदि पूजक किसी ऋद्धिधारी मुनि या साक्षात तीर्थंकर के पादमूल मे अन्तर्घडी मात्र के लिए आचरित करता है तो नियम से उसे तीन लोक की सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर पुण्य प्रकृति का बन्ध होता है। इसीलिये आचार्यों ने श्रावक को जिनेन्द्र की पूजा परम्परा से मोक्ष का कारण कहा है।

आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि आचार्य ने महान ग्रंथराज धवला मे कहा है जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्त और निकाचित रुप भी मिथ्यात्वादि कर्म कलाप का क्षय देखा जाता है। अर्हंत नमस्कार तत्कालीन बन्ध की अपेक्षा असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा का कारण है। जो भव्य भक्ति पूर्वक जिन भगवान की पूजन दर्शन स्तुति करते हैं वह तीनो लोको मे स्वय ही दर्शन पूजन और स्तुति के योग्य हो जाते हैं।

जिनेन्द्र प्रभू की पूजन से उत्तम फल और सिद्धियो की प्राप्ति होती है जबकि ज्ञान पूर्वक उसकी प्रवृत्ति हमारे जीवन मे घटित हो रही हो। एक थाली मे मगल बीजाक्षरो को अंकित कर मन्त्रोच्चार पूर्वक उन बीजाक्षरो पर अर्घ्य चढ़ाते हैं उनका हेतु अवश्य हमे जानना चाहिए। क्योंकि बिना कारण के कार्य की सिद्धि नहीं होती हमारे आगम ग्रंथों मे पूर्वाचार्यों ने परम्परा से श्रुत केवलियो द्वारा बताये गये मार्ग के अनुसार पूजा के क्रम और विधियो का व्याख्यान

दिया है उसे हम विवेक पूर्वक प्रवृत्ति मे आचरित करें जिससे हमारी पूजा प्रवृत्ति मोक्षसिद्धि मे साधक बन सके ।

बीजाक्षर वाली थाली में सर्व प्रथम हमे ऊपर ॐ बीजाक्षर लिखना चाहिये उसके नीचे 'श्री' तथा 'श्री' के नीचे 'स्वास्तिक' (सांथिया) बीजाक्षरो के नीचे तीन बिन्दु बनाना चाहिये या ह्रीं ह्रीं ह्रीं लिखना चाहिये । दाये हाथ तरफ 'श्री' बीजाक्षर के पार्श्व मे पाच बिन्दु एवं बायेंहाथ तरफ चार बिन्दु आरोपित करना चाहिए । ठोने पर अष्ट पंखुड़ी कमल का आकार बनाना चाहिए । यह ऐसा क्यो और किस-लिए किया जाता है इस शंका का समाधान पूर्वक ज्ञान अवश्य प्राप्त करे । उसका समाधान एव विधि इस प्रकार है—

जब हम देव, शास्त्र, गुरु और सिद्ध भगवान की पूजा करे तो आठो द्रव्य ॐ बीजाक्षर पर ही चढ़ाना चाहिए क्योकि ॐ बीजाक्षर पंच परमेष्ठी का वाचक बीजाक्षर है इस पर द्रव्य चढाने का मतलब भगवान जिनेन्द्र देव के पादमूल मे की जाने वाली हमारी इस पूजा से होने वाला शुभाश्रव जब भी उदय मे आये तो मै पंचपरमेष्ठी जैसे मंगल पद पर अधिष्ठित होऊं । ॐ बीजाक्षर पर आराधना के साथ अर्पित द्रव्य की आकाक्षा इस हेतु की बोधक है । तथा इस पूजा का फल मुझे यह प्राप्त हो कि ॐ बीजाक्षर मेरी आत्मा के प्रदेशो मे आत्मभूत हो । जब तक कोई मन्त्र या बीजाक्षर आत्म-भूत नहीं होता तब तक उसका प्रभाव भी स्वयं या अन्य जीवो पर नहीं पड़ता । मन्त्र जब आत्मभूत हो जाता है तभी स्व एवं पर के ऊपर प्रभावी हो सकता है मात्र मंत्र को पढ़लेने से सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती ।

इसी प्रकार ॐ बीजाक्षर जब इस आराधना से आत्म-भूत होगा तब हम उस पूजा के फल को अर्थात् पंचपरमेष्ठी के पद को प्राप्त करने की पात्रता प्राप्त कर सकेंगे। ॐ बीजाक्षर के नीचे 'श्री' बीजाक्षर पर हम तीर्थंकरों की पूजा के अष्ट द्रव्य चढ़ायें भूत भावी वर्तमान या विद्यमान कोई भी तीर्थंकर हो तीर्थङ्कर की पूजा की सामग्री श्री बीजाक्षर पर आरोपित करते हुए पूजक की यह भावना हो कि यह बीजाक्षर मेरी आत्मा मे अभिभूत हो श्री बीजाक्षर श्रेय का देने वाला है तीर्थङ्कर की पूजा से हम यही श्रेय प्राप्त करना चाहते हैं कि मेरी आत्मा तीर्थङ्कर जैसी हो यह तभी सम्भव है जब श्री बीजाक्षर हमारी आत्मा मे आत्मभूत हो जाए।

जब हम किसी व्रत या निर्वाण भूमि (तीर्थ क्षेत्र) की पूजन करें तो आठों द्रव्य स्वास्तिक बीजाक्षर पर ही चढ़ायें क्योंकि स्वास्तिक कल्याण का प्रतीक है और व्रत तथा निर्वाण भूमि आदि भी कल्याण का प्रतीक मानी गई है बायें हाथ तरफ चार बिन्दु होते हैं वह अर्हंत, सिद्ध, साधु एवं धर्म इन चार मंगल के प्रतीक हैं। यह चारों ही मगलमय हैं लोक मे उत्तम हैं और इनकी शरण से ही आत्मा अनन्त सुख की पात्र बनती है। पुष्पक्षेपण इन्हीं भावनाओं के प्रतीक होते हैं। अत. पुष्पाञ्जलि इन्हीं बिन्दुओं पर करना चाहिए।

दायें हाथ तरफ जो पाच बिन्दु होते हैं उन पर अपवित्रा पवित्रोवा···पद बोलने के बाद पाच अर्घ्य चढ़ाना चाहिए। अर्घ चढ़ाने के पूर्व उदकचंदनतंदुल पद बोलकर मत्र पूर्वक प्रथम बिन्दु पर अर्हंत सिद्धाचार्य उपाध्याय सर्वसाधु के लिए, द्वितीय बिन्दु पर भगवान के गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान निर्वाण पंचकल्याणक के लिए, तृतीय बिन्दु पर भगवान के

एक हजार आठ गुणों का चौथे बिन्दु पर भगवान के मुख कमल से उद्भूत प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग द्रव्यानुयोग का और अन्तिम पाँचवें बिन्दु पर मोक्षशास्त्र, तत्त्वार्थ सूत्र का अर्घ्य चढाना चाहिए।

हमारी आगम परम्परा मे भी जिस तरह से ऊपर बीजाक्षर थाली मे लिखने का निर्देश दिया गया है उसी क्रम से पूजा का विधान पूर्वाचार्यों की परम्परानुसार हम दैनिक रूप मे आचरित करते हैं। (सातिया) के नीचे जो तीन बिन्दु होते हैं समस्त पूजाओ के बाद हम जिस स्थान पर (नगर या गाव) मे पूजा कर रहे हैं उस नगर या ग्राम के ऊपर, मध्य और भूमिगत जितने भी जिन मंदिर प्रतिमाये है उनको अंतिम अर्घ्य चढाकर अंतमे शाति विसर्जन पाठ बोलना चाहिए।

वसुनन्दि आचार्य ने लिखा है जल से पूजन करने से पाप रूपी मैल का सशोधन होता है। चन्दन चढाने से मनुष्य सौभाग्य से सम्पन्न होता है अक्षत चढाने से अक्षयनिधि रूप मोक्ष को प्राप्त करता है। वह चक्रवर्ति होता है। और सदा अक्षोभ रोग शोक रहित निर्भय होते हुए अक्षीण लब्धि से युक्त होता है। पुष्प से पूजन करने वाला कामदेव के समान समर्चित देह वाला होता है। नैवेद्य चढाने से मनुष्य शक्ति, कान्ति और तेज से सम्पन्न होता है दीप से पूजन करने वाला केवलज्ञानी होता है धूप से पूजन करने से त्रैलोक्य व्यापी यश वाला होता है तथा फलो से पूजन करने वाला निर्वाण सुखरूप फल को पाने वाला होता है।

जिनेन्द्र भगवान के पादमूल मे खडे होकर ही पूजन करना उत्कृष्ट है। बीमारी, वृद्धापन अथवा असहाय अवस्था

को छोड़कर बैठकर पूजन करना मध्यम भक्ति के अन्तर्गत आता है।

नित्य नैमित्तिक के भेद से पूजा अनेक प्रकार की है जो जल चंदनादि अष्ट द्रव्य से ही की जाती है। अभिषेक एव गान नृत्य आदि के साथ की गई पूजन प्रचुर फलदायी होती है। नाम स्थापना, द्रव्य, क्षेत्र, काल भाव की अपेक्षा पूजा के ६ भेद आगम मे कहे गए हैं। इज्या आदि की अपेक्षा पूजा के चार प्रकार है सदार्चन, अर्थात नित्य नियम पूजन, चतुर्मुख अर्थात सर्वतोभद्र पूजन, कल्पद्रुम एवं आष्टान्हिक। नित्य नियम पूजन के अन्तर्गत अष्ट द्रव्य से जिनालय मे जिन भगवान की पूजा करना, अर्हंत देवो की प्रतिमा और मंदिर बनवाना, शक्ति अनुसार नित्य दान देना, महामुनियो की पूजन करना नित्यमह पूजन है। जो जीव भगवान जिनेन्द्रदेव का दर्शन करते है न पूजन करते है और न स्तुति करते हैं, उनका जीवन निष्फल है। आचार्यों ने उन्हें धिक्कारा है।

आचार्य सोमसेन ने तो यहा तक लिखा है कि ऐसा व्यक्ति जो जिनेन्द्रदेव की पूजा और मुनियो की उपचर्या बिना अन्न का भक्षण करता है वह सातवें नरक के कुम्भीपाक बिल मे दुख भोगता है। अकेली जिनेन्द्र देव की भक्ति ही दुर्गति का नाश करने मे समर्थ है इससे विपुल पुण्य की प्राप्ति होती है। और मोक्ष प्राप्त होने तक इससे इन्द्र, चक्रवर्ति जैसे पद के सुखो की प्राप्ति होती है। कषायपाहुड़ ग्रन्थ मे लिखा है–

अरहंतण मोक्कारो संपहिय बंधा दो,
असंखेज्ज गुण कम्मक्खंयकार ओत्ति॥

अर्थात् अर्हंत को नमस्कार करना तत्कालीन बंध की अपेक्षा

असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा का कारण है। पूजन के आगम में ५ अंग कहे हैं आव्हानन, स्थापना, सन्निधिकरण पूजन, विसर्जन अतः प्रत्येक श्रावक को आगम आज्ञानुसार भगवान जिनेन्द्र देव की पूजा करना चाहिए।

भगवान जिनेन्द्र देव की पूजन असंख्यात गुणी कर्म निर्जरा का कारण है। राग भाव के उपशमन के लिए पूजन प्रधान कर्म है। पूजन में ही पंचपरमेष्ठियों की प्रतिमाओं काही आश्रय होता है नित्य नैमित्तिक भेद से वह अनेक प्रकार की है जो जल चन्दन, अक्षत पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप, फल से की जाती है। जिनाभिषेक पूर्वक संगीत के साथ की जाने वाली पूजन प्रचुर फलदायी कही गई है। महापुराण में चार प्रकार की पूजा कही गई है। (१) सदार्चन- इसे नित्यमह भी कहते हैं अर्थात् जो प्रतिदिन हम अपने घर से अष्ट द्रव्य ले जाकर जिन प्रतिमा के सम्मुख पूजन करते हैं। जिन प्रतिमा का निर्माण, मंदिर निर्माण तथा धानादि देना सदा- र्चन है। मुनिराजों की पूजन भी इसके अन्तर्गत है।

(२) चतुर्मुख या सर्वतोभद्र वह पूजन है जो विशेष रूप से तीन लोक के कृतिम अकृतिम जिनालयों एवं उनमें स्थापित जिन प्रतिमाओं की पूजन मुकुटवद्ध राजाओं के द्वारा विशेष रूप से जो महायज्ञ किया जाता है वह सर्वतोभद्र पूजन कही जाती है।

(३) कल्पद्रुम तीर्थंकर के समवशरण की रचना कर आगम वर्णित पूज्यजन की पूजनकरना कल्पद्रुम है। यह पूजन चक्रवर्तियों द्वारा किमिच्छिक दान देकर की जाती है सबकी आशाये पूर्ण होती हैं। (४) आष्टान्हिक-जो अष्टान्हिका पर्व मे की जाती है जो सब लोग करते हैं और जगत मे प्रसिद्ध

है। इसके अलावा सिद्धचक्र, इन्द्रध्वज, अनेक प्रकार की विशेष पूजाये है जो इन्हीं चार भेदो के अन्तर्भूत हैं। वसुनन्दी श्रावकाचार में निक्षेपों की अपेक्षा पूजन के छह भेद कहे गये हैं।

(१) **नाम पूजा**— अर्हंतादि का नाम उच्चारण करके जो पुष्प क्षेपण किये जाते हैं वह नाम पूजा है।

(२) **स्थापना पूजा**— आकारवान अर्हंतादि के गुणो का आरोपण करना सद्भाव स्थापना पूजा है तथा अक्षत पुष्प आदि मे अपनी बुद्धि से किसी देव का संकल्प करके उच्चारण करना असद्भाव स्थापना पूजा है।

(३) **द्रव्य पूजा**— अष्ट द्रव्य चढाकर पूजन करना द्रव्य पूजा है। अमितगत श्रावकाचार मे अष्टाग नमस्कार करना प्रदक्षिणा देना जिनेन्द्र के गुणो का स्तवन करना द्रव्य पूजा के अन्तर्गत समाहार किया गया है।

(४ **क्षत्र पूजा**— तीर्थंकरो के पचकल्याणक भूमि पर पूजन करना क्षेत्र पूजा अन्तर्गत समाहार है।

(५) **काल पूजा**—तीर्थंकरो के कल्याणक दिवस के दिन अथवा अष्टान्हिकादिक पर्व के दिन जो जिनेन्द्र की महिमा की जाती है काल पूजा है।

(६) **भाव पूजा**— मन से अर्हंतादि के गुणों का चिन्तन करना भाव पूजा है। चार प्रकार का ध्यान भी भाव पूजा के अन्तर्गत है। जाप करना जिनेन्द्र स्तवन पढ़ना भी भाव पूजा के अन्तर्गत आता है।

भावानुभूति को शब्दों में व्यक्त करना नैसर्गिक प्रतिभा का उपकार है। काव्य रचना दो प्रकार की होती है। एक तो

तथ्य को शब्दो मे पिरोकर प्रस्तुत करना उसकी कलात्मक चतुरता है। दूसरा तथ्य को सत्य तक ले जाकर हृदय मे अनुभूति प्रदान करना यह नैसर्गिक प्रतिभा है। संस्कृत पूजाओ मे ऐसी ही नैसर्गिक प्रतिभा का दर्शन होता है। इसीलिए यह पूजायें हमारी आत्मसिद्धि के लिए सबल सोपान है। आशा है इन पूजाओ से अनेक भव्य मोक्ष सिद्धि प्राप्त करने मे सफल होगे।

आदरणीय श्रीमान सौभाग्यमल जी जैन काला ने संस्कृत पूजाओ का हिन्दी अर्थ सहित प्रकाशन कराकर एक लोकोत्तर सद्कार्य साकार किया है। आरम्भ से ही ज्ञानार्जन के प्रति यह जिज्ञासु रहे हैं और श्रावक के षट् कर्म इनके जीवन की साधना के तो सोपान ही है इनकी देवपूजा गुरु भक्ति और दान प्रवृत्ति अवश्य अपने आप मे महान और वन्दनीय है। इनकी धर्म पत्नि श्रीमती सौ० शान्तिदेवी यथार्थत नारी गुणो की साकार मूर्ति है अपने पति के साथ उदारता पूर्वक दान देना सद्कार्यों के प्रति सदैव सहयोगी रहना तथा ज्ञान, ध्यान, व्रताचरण के प्रति सदैव अग्रणी रहना इनका अपना मुख्य दैनिक कर्त्तव्य है यथा नाम तथा गुण की यह साकार मूर्ति हैं।

श्री सौभाग्यमल जी के सभी प्रतिभाशाली पुत्र पिता के सभी कार्यों मे उदारता पूर्वक प्रसन्नता से सहयोग देते हैं यह विरले पिता को ही ऐसे पुत्रो का सुख प्राप्त होता है।

माँ जिनवाणी के आराधक ऐसे परिवार की सुख समृद्धि ऐश्वर्य दीर्घ आयु की मंगल कामना के साथ इस लोकोत्तर कृति के प्रकाशन के प्रति हम अपना हर्षित भाव व्यक्त करते हैं ।

महावीर जयन्ती
१९९१

—पं. विमलकुमार जैन सोंरया
एम ए. शास्त्री प्रतिष्ठाचार्य
प्रधान सम्पादक–वीतराग वाणी मासिक
टीकमगढ़ (म० प्र०)

विषयानुक्रम

❀

अभिषेक पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्रमभिवन्द्य जगत्त्रयेशं
स्याद्वाद-नायकमनन्त-चतुष्टयार्हम् ।
श्रीमूलसंघ-सुदृशां सुकृतैकहेतु-
जैनेन्द्र-यज्ञविधिरेष मयाभ्यधायि ॥१॥

तीन लोक के ईश, स्याद्वाद नीति के नायक और अनंत चतुष्टय के धनी श्रीसम्पन्न जिनेन्द्रदेव को नमस्कार करके मैंने मूल सघ के अनुसार सम्यग्दृष्टि जीवो के सुकृत की एकमात्र कारण भूत जिनेन्द्रदेवकी यह पूजा विधि कही है।

[श्लोकमिम पठित्वा जिनचरणयोः पुष्पाजलि प्रक्षिपेत्]

(इस श्लोक को पढ़कर ही श्री जिनचरणो के अग्रभाग मे पुष्पाञ्जलि क्षेपण करे।)

सौगन्ध्य संगतमधुव्रत-झङ्कृतेन
संवर्ण्यमानमिव गन्धमनिन्द्यमादौ ।
आरोपयामि विबुधेश्वर-वृन्द-वन्द्य-
पादारविन्दमभिवन्द्य जिनोत्तमानाम् ॥२॥

मै विबुधेश्वरवृन्द के द्वारा वन्दनीय ऐसे श्री जिनेन्द्र-देव के चरणकमलको नमस्कार करके अभिषेक महोत्सव के प्रारम्भ मे अपनी सुगन्धि के कारण आते हुए भ्रमर समूह के मधुर शब्द से प्रशंसित किये गये के समान अनिन्द्य गन्ध का आरोपण करता हूं।

(इति पठित्वा नवस्थानेषु तिलकन्यासः)

(यह पढ़कर शरीर में ललाट आदि नौ स्थानों पर चंदन का तिलक करे।)

ये सन्ति केचिदिह दिव्य-कुल-प्रसूता

नागाः प्रभूत-बल-दर्पयुता विबोधाः ।

संरक्षणार्थममृतेन शुभेन तेषां

प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम् ॥३॥

इस लोक मे प्रभूत बल और दर्प से युक्त, बुद्धिशाली तथा दिव्य कुल में उत्पन्न हुए जो नागदेव है उनके समक्ष संरक्षण के लिए प्रशान्त जल से स्नपनभूमिका प्रक्षालन करता हूँ।

(इति पठित्वा नागसतर्पणं भूमिशोधनम्)

(यह पढकर नागसन्तर्पणपूर्वक स्नपनभूमिका का प्रक्षालन करे)

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहै.

प्रक्षालितं सुरवरैर्यदनेकवारम् ।

अत्युद्‌घमुद्यतमहं जिनपादपीठं

प्रक्षालयामि भव-सभव-तापहारि ॥४॥

देवेन्द्रो ने क्षीर समुद्र के जल के निर्मल प्रवाह से संसारताप का हरण करने वाले और अत्युन्नत जिस जिनपाद पीठ का अनेक बार प्रक्षालन किया है, समुपस्थित हुए उस पादपीठ का मै प्रक्षालन करता हूँ।

(इति पठित्वा पीठप्रक्षालनम्)

(यह पढ़कर पादपीठ को स्थापित कर उसका प्रक्षालन करे)

श्रीशारदा-सुमुख-निर्गत-बीजवर्णं

श्रीमङ्गलीक-वर-सर्वजनस्य नित्यम् ।

श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नं
श्रीकार-वर्ण-लिखितं जिन-भद्रपीठे ।।५।।

श्रीसम्पन्न शारदा के मुख से निकले हुए, सब जनो के लिए सदा मङ्गल स्वरूप, विघ्नो का नाश करने वाले और स्वय शोभा सम्पन्न ऐसे श्रीकार वर्ण को मै जिनेन्द्र देव के भद्र पीठ पर लिखता हूँ।

(इति पठित्वा पीठे श्रीकारलेखनम्)
(यह पढ़कर पाद पीठ पर 'श्री' लिखे।)

इन्द्राग्नि-दण्डधर-नैऋत-पाशपाणि-
वायूत्तरेश-शशिमौलि-फणीन्द्र-चन्द्राः ।
आगत्य यूयमिह सानुचराः सचिह्ना
स्वं स्वं प्रतीच्छत बलिं जिनपाभिषेके ।६।

हे इन्द्र, अग्नि, यम, नैऋत, वरुण, पवन, कुबेर, ऐशान, धरणीन्द्र और सोमदेव ! जिनेन्द्र देव के अभिषेक के समय, अपने अपने अनुचरो और अपने अपने चिन्हो के साथ यहा आकर अपनी-अपनी भेंट को स्वीकार कीजिए।

(पुरोलिखितान्मन्त्रानुच्चार्य क्रमशो दशदिक्पालकेभ्योऽर्घ्य-समर्पणम्)

(आगे लिखे मन्त्रो का उच्चारण कर दस दिक्पालो को अर्घ्य दे।)

ॐ आं क्रौं ह्रीं इन्द्र आगच्छ आगच्छ इन्द्राय स्वाहा ।
ॐ आं क्रौं ह्रीं अग्ने आगच्छ आगच्छ अग्नये स्वाहा ।
ॐ आं क्रौं ह्रीं यम आगच्छ आगच्छ यमाय स्वाहा ।

ॐ आं क्रौं ह्रीं नैऋत आगच्छ आगच्छ नैऋताय स्वाहा
ॐ आं क्रौं ह्रीं वरुण आगच्छ आगच्छ वरुणाय स्वाहा ।
ॐ आं क्रौं ह्रीं पवन आगच्छ आगच्छ पवनाय स्वाहा ।
ॐ आं क्रौं ह्रीं कुबेर आगच्छ आगच्छ कुबेराय स्वाहा ।
ॐ आं क्रौं ह्रीं ऐशान आगच्छ आ. ऐशानाय स्वाहा ।
ॐ आं क्रौं ह्रीं धरणीन्द्र आ. आ. धरणीन्द्राय स्वाहा ।
ॐ आं क्रौं ह्रीं सोम आगच्छ आगच्छ सोमाय स्वाहा ।

ओ आ क्रौं ह्री हे इन्द्रदेव ! आइए आइए, इन्द्रदेव को अर्घ्य ।
ओ आं क्रौं ह्रीं हे अग्निदेव ! आइए आइए, अग्निदेवको अर्घ्य ।
ओ आ क्रौ ह्रीं हे यमदेव ! आइए आइए, यमदेव को अर्घ्य ।
ओ आ क्रौं ह्रीं हे नैऋतदेव ! आइए आइए, नैऋतदेवको अर्घ्य ।
ओ आं क्रौ ह्री हे वरुणदेव ! आइए आइए, वरुणदेव को अर्घ्य ।
ओ आ क्रौं ह्री हे पवनदेव ! आइए आइए, पवनदेव को अर्घ्य ।
ओ आ क्रौं ह्रीं हे कुबेरदेव ! आइए आइए, कुबेरदेव को अर्घ्य ।
ओ आ क्रौं ह्री हे ऐशानदेव ! आइए आइए, ऐशानदेवको अर्घ्य ।
ओ आं क्रौं ह्रीं हे धरणीन्द्रदेव ! आइए २ धरणीन्द्रदेवको अर्घ्य ।
ओ आ क्रौ ह्रीं हे सोमदेव ! आइए आइए, सोमदेव को अर्घ्य ।

इति दिक्पालमन्त्रा'

दध्युज्जवलाक्षत-मनोहर-पुष्प-दीपैः
पात्रार्पितं प्रतिदिनं महतादरेण ।
त्रैलोक्य-मङ्गल-सुखालय-कामदाह
मारार्तिकं तव विभोरवतारयामि ॥७॥

जो पात्र मे रखे हुए दही, उज्ज्वल अक्षत, मनोहर पुष्प और दीप से सजायी गई है, तीन लोक की मंगलरूप है, सुख की आलय है और काम का दाह करने वाली है उससे हे विभो ! मैं आपकी आरती उतारता हूँ।

(पात्रार्पितैर्दधितण्डुलपुष्पदीपैर्जिनस्यारार्तिकावतरणम्)
(यह पढकर पात्र मे रखे हुए दही आदि से जिन देव की आरती उतारे।)

यं पाण्डुकामल-शिलागतमादिदेव-
मस्नापयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि ।
कल्याणमीप्सुरहमक्षत-तोय-पुष्पैः
संभावयामि पुर एव तदीय-बिम्बम् ॥८॥

सुमेरु पर्वत के अग्रभाग में स्थित निर्मल पाण्डुक शिला पर स्थित श्री आदि जिनका पहले देवेन्द्रो ने अभिषेक किया था, कल्याण का इच्छुक मै उन आदि जिनकी प्रतिमा की स्थापना कर अक्षत, जल और पुष्पो से पूजा करता हूँ।

(जलाक्षतपुष्पाणि निक्षिप्य श्रीवर्णे प्रतिमास्थापनम्)
(जल, अक्षत और पुष्पो का क्षेपण कर श्री वर्ण के ऊपर प्रतिमा को स्थापित करें।)

सत्पल्लवार्चित-मुखान्कलधौतरौप्य-
ताम्रारकूट-घटितान्पयसा सुपूर्णान् ।
संवाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान्
संस्थापयामि कलशाञ्जिनवेदिकान्ते ॥९॥

जो उत्तमोत्तम पल्लवो से अर्चित किये गये हैं, जो

स्वर्ण, चांदी, तॉबे और रांगे से निर्मित हैं और जल से भरे हुए हैं ऐसे चार कलशों को जिनवेदिका के चारों कोणों पर मानों चार समुद्र ही हों ऐसा मानकर स्थापित करें।

(आम्रादिपल्लवशोभितमुखाश्चतु कलशान् पीठचतु. कोणेषु स्थापयेत्)

(पल्लवों से सुशोभित मुखवाले चार कलश पीठ के चारों कोणों पर स्थापित करें।)

आभिः पुण्याभिरद्भिः परिमल-बहुलेनामुना चन्दनेन
श्रीदृक्पेयैरमीभिः शुचि–शदकचयैरुद्गमैरेभिरुद्घै. ।
हृद्यैरेभिर्निवेद्यैर्मख–भवनमिमैर्दीपयद्भिः प्रदीपैः
धूपैः प्रेयोभिरेभिः पृथुभिरपि फलैरेभिरीशं यजामि।१०।

मैं पवित्रीभूत इस जल से, परिमलबहुल इस चन्दन से, लक्ष्मी के नेत्रों को सुखकर और पवित्र इन अक्षतों से, उत्तम सुगन्धवाले इन पुष्पों से, हृद्य इन नैवेद्यों से, मख के भवन को प्रकाशित करने वाले इन प्रदीपों से, सुगन्ध से परिपूर्ण इन धूपों से और इन बडे फलों से श्री जिनेन्द्र देव की पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं श्री परमदेवाय श्रीअर्हत्परमेष्ठिनेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

(ओ ह्रीं श्री परमदेव अर्हत्परमेष्ठी के लिए अर्घ्य समर्पण करता हूं।)

दूरावनम्र-सुरनाथ–किरीट-कोटि-
संलग्न–रत्न-किरण-च्छवि-धूसराङ्घ्रिम् ।
प्रस्वेद-ताप-मल–मुक्तमपि प्रकृष्टै–

भक्त्या जलैर्जिनपतिं बहुधाऽभिषिञ्चे॥११॥

श्री जिनेन्द्र देव के जो चरण दूर से नम्र हुए इन्द्रो के मुकुटो के अग्रभाग में लगे हुए रत्नो की किरणच्छवि से धूसर हो रहे हैं और जो प्रस्वेद, ताप और मल से मुक्त हैं उन जिनेन्द्र देव का मै भक्ति पूर्वक प्रकृष्ट जल से अनेकानेक बार अभिषेक करता हू।

[ॐ ह्रो श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादिमहावीर-पर्यन्तचतुर्विंशतितीर्थङ्करपरमदेवं आद्यानां आद्ये जम्बूद्वीपे भरतक्षेत्रे आर्यखण्डे नाम्निनगरे मासानामुत्तमेमासे मासे पक्षे शुभदिने मुन्यार्थिका–श्रावक–श्राविकाणा सकलकर्मक्षयार्थं जलेनाभिषिञ्चे नम.]

[ओ ह्रो सब द्वीपो के मध्य विराजमान जम्बूद्वीप मे भरत क्षेत्र मे आर्यखंड मे नाम के नगर मे सब मासो मे उत्तम मास मे पक्ष की के शुभ दिन मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविकाओ के समस्त कर्मों का क्षय करने के लिए मै अन्तरंग और वहिरंग लक्ष्मी से सुशोभित परम कृपालु भगवान ऋषभदेव से लेकर महावीर पर्यन्त चौवीस तीर्थङ्करो का जल से अभिषेक करता हूँ।]

(इति पठित्वा जिनस्य जलाभिषेकं कृत्वा उदकचन्दनेति श्लोकं पठित्वा अर्घ्यं समर्पयेत्)

(यह पढकर श्री जिन प्रतिमा पर कलश से जल की धारा छोडे तथा 'उदकचन्दन' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे।)

उत्कृष्ट-वर्ण-नव—हेम—रसाभिराम-

देह-प्रभा वलय—संगम-लुप्त दीप्तिम्।

धारां घृतस्य शुभ-गन्ध-गुणानुमेयां
वन्देऽर्हतां सुरभि-संस्नपनोपयुक्ताम् ॥१२॥

उत्कृष्ट वर्ण वाले नूतन हेम रसके समान मनोरम देह के प्रभावलय के सम्पर्क से जिसकी दीप्ति लुप्त हो गयी है और जो अपने सुगन्ध गुण के द्वारा अनुमेय है ऐसी अर्हत्पर-मेष्ठी के अभिषेक के योग्य घृतधारा को मैं नमस्कार करता हूँ।

(ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं इत्यादिमन्त्रं पठित्वा घृतेनाभिषिञ्चे इति पठित्वा घृताभिषेकं कुर्यात्।)

(ओं ह्रीं सब द्वीपो के मध्य विराजमान इत्यादि मन्त्र को को पढते हुए ' अन्त मे घी से अभिषेक करता हूं यह पढ़-कर घी की धारा देवे और अन्त मे 'उदकचन्दन' पढ़कर अर्घ्य चढावे।)

संपूर्ण-शारद-शशाङ्क-मरीचि-जाल-
स्यन्दैरिवात्मयशसामिव सुप्रवाहैः ।
क्षीरैर्जिनाः शुचितरैरभिषिच्यमानाः
संपादयन्तु मम चित्त-समीहितानि ॥१३॥

यह शरदकालीन पूर्णमासी के चन्द्मा के किरण समूह का झरना ही है या अपने यश का प्रवाह ही है ऐसे शुचितर विविध प्रकार के दुग्ध से अभिषिक्त हुए जिनेन्द्र देव मेरे चित्त के समीहितो को सम्पादित करं।

(उपरितनं मन्त्रं पठत्वा जलेनाभिषिञ्चे इत्यस्मिन्स्थाने क्षीरे-णाभिषिञ्चे इत्युच्चार्य क्षीराभिषेकं कुर्यात्।)

(ओं ह्रीं सब द्वीपो के मध्य विराजमान''' इत्यादि मन्त्र को

पढ़ते हुए अन्त मे दुग्ध से अभिषेक करता हूँ यह पढ़कर दुग्ध की धारा छोड़े और 'उदकचन्दन' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे ।)

दुग्धाब्धि-वीचि–चयसंचित–फेनराशि-
पाण्डुत्व–कान्तिमवधीरयतामतीव
दध्नां गता जिनपतेः प्रतिमां सुधारा
संपद्यतां सपदि वाञ्छित सिद्धये नः ।१४।

क्षीर समुद्र के जल मे उठने वाली तरङ्गो से अञ्चित हुई फेनराशि की शुक्ल आभा जिसके सामने कुछ भी नहीं है ऐसी जिन प्रतिमा पर छोड़ी गयी दही की धारा हम लोगो को वाञ्छित सिद्धि को तत्काल सम्पादित करे।

(उपरितनं मन्त्रं पठित्वा जलेनाभिषिञ्चे इत्यस्मिन्स्थाने दध्नाभिषिञ्चे इति पठित्वा दध्याभिषेकं कुर्यात्।)

(ओ ह्रीं सब द्वीपो के मध्य विराजमान ˙ ˙ ˙ इत्यादि मन्त्र को पढ़ते हुए अन्त मे दही से अभिषेक करता हूं यह पढ़कर दही की धारा छोडे और 'उदकचन्दन' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे।)

भक्त्या ललाट–तटदेश–निवेशितोच्चै–
र्हस्तैश्च्युता सुरवरासुर-मर्त्यनाथैः ।
तत्काल-पीलित-महेक्षु—रसस्य धारा
सद्यः पुनातु जिन बिम्ब-गतैव युष्मान् ।१५।

जिन्होने अपने हाथ उठाकर ललाटतट–देश में अञ्जलिबद्ध किये हैं ऐसे देवेन्द्र, असुरेन्द्र और मर्त्येन्द्रों के द्वारा जिन–प्रतिमा पर छोड़ी गई पेलकर निकाले हुए इक्षुरस की धारा तुम लोगो को सद्य. पवित्र करे।

(उपरितनं मन्त्रं पठित्वा जलेनाभिषिञ्चे इत्यस्मिन्स्थाने इक्षुरसेनाभिषिञ्चे इति पठित्वा इक्षुरसाभिषेकं कुर्यात्)
(ओं ह्रीं सब द्वीपों के मध्य विराजमान ' इत्यादि मंत्र को पढ़ते हुए अन्त मे इक्षुरस से अभिषेक करता हूँ यह पढकर इक्षुरस की धारा देवे और 'उदकचन्दन' पढकर अर्घ्य चढ़ावे)

संस्नापितस्य घृत-दुग्ध-दधीक्षुवाहैः
सर्वाभिरौषधिभिरर्हत उज्ज्वलाभिः ।
उद्वर्तितस्य विदधाम्यभिषेकमेला-
कालेय-कुंकुम-रसोत्कट-वारि-पूरं. ॥१६॥

घी, दूध, दही और इक्षुरस से अभिषेक करने के बाद उबटन लगाकर अब मै ऐला, कालेय और कुंकुम के रस से मिश्रित उज्जवल सर्वौषधि रूप वारिपूर से जिनदेव का अभिषेक करता हूं ।
(उपरितनं मन्त्रमुच्चार्य जलेनाभिषिञ्च इत्यस्मिन्स्थाने सर्वौषधिभिरभिषिञ्चे इति पठित्वा सर्वौषधिभिरभिषेक कुर्यात् ।)
(ओं ह्रीं सब द्वीपो के मध्य विराजमान इत्यादि मन्त्र को को पढ़ते हुए '' अन्त मे सर्वौषधि से अभिषेक करता हू यह पढ़कर सर्वौषधि की धारा देवे और 'उदकचन्दन' पढकर अर्घ्य चढ़ावे ।)

द्रव्यैरनल्प-घनसार-चतुःसमाद्यै-
रामोद-वासित-समस्त-दिगन्तरालैः ।
मिश्रीकृतेन पयसा जिनपुङ्गवानां
त्रैलोक्य-पावनमहं स्नपनं करोमि ॥१७॥

[जिनके आमोद से समस्त दिशाओ के अन्तराल सुवा-

सित हो रहे हैं ऐसे कर्पूरबहुल चार प्रकार के सुगन्धी द्रव्यो से मिश्रित जल से मैं जिनेन्द्रदेव का तीन लोक मे पावनीभूत अभिषेक करता हूं।]

[जलेनाभिषिञ्चे इति स्थाने सुगन्धिजलेनेति पठित्वा स्नपनं कुर्यात]

(ओ ह्रीं सब द्वीपो के मध्य विराजमान इत्यादि मन्त्र को पढते हुए अन्त मे सुगन्ध जल से अभिषेक करता हूं। ऐसा कहकर सुगन्ध जल की धारा देवे और 'उदकचन्दन' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे)

इष्टैर्मनोरथ-शतैरिव भव्यपुंसां
पूर्णै. सुवर्ण-कलशैर्निखिलावसानैः ।
संसार-सागर--विलघन--हेतु-सेतु-
माप्लावये त्रिभुवनैकपति जिनेन्द्रम् ॥१८॥

भव्य जीवो के सैकडो इष्ट मनोरथो की शोभा को धारण करने वाले समस्त पूर्ण सुवर्ण कलशो से ससार रूपी समुद्र को लाघने के लिए सेतु रूप और तीन लोक के स्वामी श्री जिनेन्द्र का मैं अन्त मे अभिषेक करता हूं।

(उपरितनमन्त्रेणैव समस्त कलशैरभिषेकं कुर्यात्)

(ओ ह्री सब द्वीपों के मध्य विराजमान. इत्यादि मन्त्र को पढते हुए अन्त मे सब कलशो से अभिषेक करता हूं यह पढकर कलशो से अभिषेक करे और 'उदकचन्दन' पढ़कर अर्घ्य चढ़ावे।)

शान्तिधारा पाठ

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय-द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते । ॐ ह्रीं क्रों मम पापं खण्डय खण्डय जहि-जहि दह-दह पच-पच पाचय २ । ॐ नमो अर्हन् झं झ्वीं क्ष्वीं हं सं झं वं ह्वः पः हः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः द्रां द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः अस्माकं श्रीरस्तु वृद्धिरस्तु तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु शान्तिरस्तु कान्तिरस्तु कल्याणमस्तु स्वाहा । एवं अस्माकं कार्यसिद्ध्यर्थं सर्वविघ्ननिवारणार्थं श्रीमद्भ-गवदर्हत्सर्वज्ञपरमेष्ठिपरमपवित्राय नमोनमः । अस-माक श्रीशान्तिभट्टारकपादपद्मप्रसादात् सद्धर्म श्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु सद्धर्मस्वशिष्यपर-शिष्यवर्गः प्रसीदन्तु नः ।

ॐ वृषभादयः श्रीवर्द्धमानपर्यन्ताश्चतुर्विशंत्य-र्हन्तो भगवन्तः सर्वज्ञाः परममंगलनामधेयाः अस्माक इहामुत्र च सिद्धिं तन्वन्तु कार्येषु च इहामुत्र च सिद्धिं प्रयच्छन्तु नः ।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्रीमत्पार्श्वतीर्थंक-राय श्रीमद्रत्नत्रयरूपाय दिव्यतेजोमूर्तये प्रभामण्डल-

मण्डिताय द्वादशगणसहिताय अनन्तचतुष्टयसहिताय समवशरणकेवलज्ञानलक्ष्मीशोभिताय अष्टादशदोष-रहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसंयुक्ताय परमेष्ठिपवित्राय सम्यग्ज्ञानाय स्वयंभुवे सिद्धाय बुद्धाय परमात्मने परमसुखाय त्रैलोक्यमहिताय, अनंतसंसार—चक्र-प्रमर्दनाय अनन्तज्ञानदर्शनवीर्यसुखास्पदाय त्रैलोक्य-वशङ्कराय सत्यज्ञानाय सत्यब्रह्मणे, उपसर्गविनाश-नायघातिकर्मक्षयंकराय, अजराय, अभवाय, अस्माकं-(अमुकराशिनामधेयानां) व्याधिं घ्नन्तु । श्रीजिना-भिषेकपूजनप्रसादात् अस्माकं सेवकानां सर्वदोषरोग-शोक भयपीड़ाविनाशनं भवतु ।

ओं नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेषदोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये श्रीशान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्व–विघ्नप्रणाशनाय सर्वरोगापमृत्युविनाशनाय सर्वपर-कृतक्षुद्रोपद्रवविनाशनाय सर्वारिष्टशान्ति-कराय । ओं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः अ सि आ उसा नमः मम सर्वविघ्नशान्तिं कुरु कुरु तुष्टिं पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा । मम कामं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । रतिकामं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । बलिकामं छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि । क्रोधं पापं वैरं च

छिन्धि२ भिन्धि २ । अग्निवायुभयं छिन्धि२ भिन्धि २ सर्वशत्रुविघ्नं छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वोपसर्गं छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वविघ्नं छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वराज्यभयं छिन्धि २ भिन्धि २ । सर्वचौरदुष्टभयं छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वसर्पवृश्चिकसिंहादिभयं छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वग्रहभय छिन्धि२ भिन्धि२ सर्वदोषं व्याधिं डामरं च छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वपरमंत्रं छिन्धि २ भिन्धि २ । सर्वात्मघातंपरघातं च छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वसूलरोगं कुक्षिरोगं अक्षि-रोगं शिरोरोगं ज्वररोगं च छिन्धि२ भिन्धि२ । सर्व-नरमारिं छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वगजाश्वगोमहिष अजमारिं छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वसस्यधान्य वृक्ष-लतागुल्मपत्रपुष्पफलमारिं छिंधि २ भिंधि २ । सर्व-राष्ट्रमारिं छिंधि २ भिंधि २। सर्वक्रूरवेताल-शाकिनी डाकिनी भयानि छिन्धि २ भिन्धि २। सर्ववेदनीयं छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वमोहनीयं छिन्धि२ भिन्धि२। सर्वापस्मारिं छिन्धि२ भिन्धि२। अस्माकं अशुभकर्मजनितदुःखानि छिन्धि२ भिन्धि २ दुष्टजनकृतान् मंत्रतंत्रदृष्टिमुष्टिछलछिद्रदोषान् छिन्धि २ भिन्धि भिन्धि । सर्वदुष्टदेवदानववीरनर नाहरसिंहयोगनीकृतदोषान् छिन्धि छिन्धि भिन्धि२।

सर्वअष्टकुलीनागजनित विषभयानि छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वस्थावरजंगमवृश्चिकसर्पादिकृतदोषान् छिन्धि २ भिन्धि २। सर्वसिंहाष्टापदादिकृतदोषान् छिन्धि २ भिन्धि २। परशत्रुकृतमारणोच्चाटन विद्वेषण-मोहनवशीकरणादिदोषान् छिन्धि २ भिन्धि २। ॐ ह्रीं अस्मभ्यं चक्रविक्रम सत्वतेजोबलशौर्यशान्तीः पूरय पूरय। सर्वजीवानन्दनं जनानन्दनं भव्यानन्दनं गोकुलानन्दनं च कुरु कुरु। सर्वराजानंदनं कुरु कुरु। सर्वग्रामनगर खेडाकर्वडमंडवद्रोणमुखसंवाहनानंदनं कुरु कुरु। सर्वानंदनं कुरु कुरु स्वाहा।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु व्याधिव्यसनवर्जितं। अभयं क्षेममारोग्यं स्वस्तिरस्तु विधीयते। श्रीशान्तिरस्तु। शिवमस्तु। जयोस्तु। नित्यमारोग्यमस्तु। अस्माकं पुष्टिरस्तु। समृद्धिरस्तु। कल्याण मस्तु। सुखमस्तु। अभिवृद्धि रस्तु। दीर्घायुरस्तु कुलगोत्रधनानि सदा सन्तु। सद्धर्म-श्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभिवृद्धिरस्तु।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं असि आ उसा अनाहत-विद्यायै णमोअरहंताणं ह्रौं सर्व शान्तिं कुरु कुरु स्वाहा।

आयुर्वल्ली विलासं सकलसुखफलैर्द्राघयित्वा श्वनल्पं धीरं वीरं शरीरं निरुपमुपनयत्वातनोत्वच्छकीर्तिं॥

सिद्धि वृद्धि समृद्धि प्रथयतु तरणिः स्फूर्जदुच्चैः प्रतापं ।
कान्ति शान्ति समाधि वितरतु भवतामुत्तमा शांतिधारा

इति शान्तिधारा ।

मुक्ति-श्री-वनिता-करोदकमिदं पुण्याङ्कुरोत्पादकं
नागेन्द्र-त्रिदशेन्द्र-चक्र-पदवी-राज्याभिषेकोद कम् ।
सम्यग्ज्ञान--चरित्र-दर्शनलता-संवृद्धि--संपादक
कीर्ति-श्री-जय-साधकं तव जिनस्नानस्य गन्धोदकं।१६।

हे जिन ! आपके स्नपन का गन्धोदक मुक्ति लक्ष्मी रूपी वनिता करके उदक के समान है, पुण्य रूपी अकुर को उत्पन्न करने वाला है, नागेन्द्र, देवेन्द्र और चक्रवर्ती के राज्य के अभिषेक के जल के समान है, सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र रूपी लता की वृद्धि का सम्पादक है तथा कीर्ति लक्ष्मी और जयका साधक है ।

(श्लोकमिमं पठित्वा गन्धोदक गृह्णीयात्)
(इस श्लोक को पढ़कर गन्धोदक को ग्रणह करे ।)
इति श्रीलघ्वभिषेकविधिः समाप्ता ।
इस प्रकार अभिषेक पाठ समाप्त हुआ ।

देवशास्त्र-गुरु-पूजा

सार्वः सर्वज्ञनाथः सकल-तनु भृतां पाप—संताप—हर्ता
त्रैलोक्याक्रान्त-कीर्तिः क्षत-मदनरिपुर्घातिकर्म-प्रणाशः ।
श्रीमान्निर्वाणसंपद्वरयुवति-करालीढ-कण्ठः सुकण्ठैः
देवेन्द्रै र्वन्द्य-पादो जयति जिनपतिः प्राप्त-कल्याण-पूजः

जो सबके हितैषी हैं, सर्वज्ञ हैं, सब जीवों के पाप रूपी सताप को हरने वाले हैं, संसार में सर्वत्र जिनका यश है, विषय वासनाओ से दूर हैं, घातिया कर्मों से रहित हैं, श्रीसंपन्न हैं, मुक्ति सम्पत्ति रूपी स्त्री से आलिङ्गित हैं, मनोहर कण्ठ वाले देवेन्द्रो के द्वारा जिनके चरण वन्दनीय हैं और जिनके पाचो कल्याणकों की पूजा होती है वे जिनेन्द्र भगवान सदा जयशील हैं ।

जय जय जय श्रीसत्कान्ति-प्रभो जगतां पते ।
जय जय भवानेव स्वामी भवाम्भसि मज्जताम् ।।
जय जय महामोह-ध्वान्त-प्रभातकृतेऽर्चनम् ।
जय २ जिनेश त्वं नाथ प्रसीद करोम्यहम् ।।२।।

हे महामनोज्ञ ! आपकी जय हो, जय हो, जय हो। हे त्रैलोक्याधिपति ! आपकी जय हो, जय हो, संसार समुद्र मे डूबते हुओ के आप ही रक्षक हैं । हे महान मोह रूपी अन्धकार को ध्वस्त करने वाले सूर्य ! आपकी जय हो, जय हो । हे जिनेश ! आपकी जय हो, जय हो। हे नाथ आप प्रसन्न हो मे आपकी पूजा करता हूँ ।

[ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र अत्र अवतर २ संवौषट् आह्वाननम् ।
ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठः स्थापनम् ।

ॐ ह्रीं भगवज्जिनेन्द्र अत्र मम संनिहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम् ।]

देवि श्रीश्रुतदेवते भगवति त्वत्पाद-पङ्केरुह-
द्वन्द्वे यामि शिलीमुखत्वमपरं भक्त्या मया प्रार्थ्यते ।
मातश्चेतसि तिष्ठ मे जिन-मुखोद्भूते सदा त्राहि मां
दृग्दानेन मयि प्रसीद भवतीं संपूजयामोऽधुना ।।३।।

हे देवि ! हे श्रुतदेवते ! हे भगवति ! तेरे चरणकमलों में भौंरे की तरह मुझे स्नेह है, हे माता ! मेरी प्रार्थना है कि तुम सदा मेरे चित्त मे बनी रहो । हे जिनमुख से उत्पन्न जिनवाणी ! तुम सदा मेरी रक्षा करो और मेरी ओर देखकर मुझ पर प्रसन्न होओ । मैं अब आपकी पूजा करता हूँ ।

[ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान अत्र अवतर२ संवौषट् ।
ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतद्वादशाङ्गश्रुतज्ञान अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।]

सपूजयामि पूज्यस्य पादपद्मयुगं गुरोः ।
तपःप्राप्त-प्रतिष्ठस्य गरिष्ठस्य महात्मनः ।।४।।

तपके कारण जिनकी बड़ी प्रतिष्ठा है, जो बड़े है और महात्मा है उन पूज्य गुरु के चरण-कमलों की मैं पूजा करता हूं ।

[ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।
ॐ ह्रीं आचार्योपाध्यायसर्वसाधुसमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।]

देवेन्द्र--नागेन्द्र--नरेन्द्रवन्द्यान्

शुम्भत्पदान् शोभित-सारवर्णान् ।

दुग्धाब्धि-संस्पर्धिगुणैर्जलौघैर्जिनेन्द्र-

सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ।।५।।

देवेन्द्र, धरणेन्द्र और नरेन्द्र जिनकी वन्दना करते हैं, जो परम पद के अधिकारी हैं, जो सुन्दर रूप या श्रेष्ठ वर्णों से सुशोभित हैं, उन जिनेन्द्रदेव, शास्त्र और गुरु की क्षीरोदधि के समान स्वच्छ और निर्मल जल से मैं पूजा करता हूं।

[ॐ ह्रीं परब्रह्मणेऽनन्तानन्तज्ञानशक्तये अष्टादशदोषरहिताय षट्चत्वारिंशद्गुणसहिताय अर्हत्परमेष्ठिने जन्ममृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

ॐ ह्रीं जिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशाङ्गश्रुतज्ञानाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।]

ताम्यत्त्रिलोकोदर-मध्यवर्ति-

समस्त-सत्त्वाहितहारि--वाक्यान् ।

श्रीचन्दनैर्गन्ध-विलुब्ध-भृङ्गैर्जिनेन्द्र-

सिद्धान्त--यतीन्--यजेऽहम् ।।६।।

जिनका उपदेश जगत् के सभी सन्तप्त प्राणियों के दुःख को दूर करने वाला है उन देव, शास्त्र और गुरु की मै जिस पर भौंरे मँडरा रहे हैं ऐसे चन्दन से पूजा करता हूँ।

[ॐ ह्रीं संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अपार–संसार–महासमुद्र–

प्रोत्तारणे प्राज्य-तरीन् सुभक्त्या ।

दीर्घाक्षताङ्गैर्धवलाक्षतौघैर्जिनेन्द्र-

सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ॥७॥

अपार संसार रूपी महासमुद्र से तारने के लिए जो बडी नौका के समान हैं उन देव, शास्त्र और गुरु की मैं दीर्घ, अत्रुटित और स्वच्छ अक्षतो से पूजा करता हू ।

[ॐ ह्रीं अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।]

विनीत-भव्याब्ज-विबोधसूर्यान्वर्यान्

सुचर्या–कथनैक–धुर्यान् ।

कुन्दारविन्द-प्रमुखैः प्रसूनैर्जिनेन्द्र-

सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ॥८॥

विनम्र भव्यरूपी कमलो को विकसित करने के लिए जो सूर्य के समान हैं, श्रेष्ठ है, और चरणानुयोग के व्याख्यान मे अग्रणी हैं उन देव, शास्त्र और गुरु की मै कुन्द और कमल आदि फूलो से पूजा करता हूँ ।

[ॐ ह्री कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

कुदर्प-कन्दर्प–विसर्प–सर्प–

प्रसह्य–निर्णाशन–वैनतेयान् ।

प्राज्याज्यसारैश्चरुभी रसाढ्यैर्जिनेन्द्र-

सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ॥९॥

दुष्ट अहंकारी और सब जगह व्याप्त कामरूपी सर्प को बलपूर्वक मारने के लिए जो गरुड़ के समान है उन देव, शास्त्र और गुरु की मैं उत्तम घी मे बने हुए षड्रस नैवेद्य से पूजा करता हूं।

[ॐ ह्रीं क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

ध्वस्तोद्यमान्धीकृत-विश्व-
विश्वमोहान्धकार-प्रतिघात दीपान्।
दीपैः कनत्कांचन-भाजनस्थैर्जिनेन्द्र-
सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ॥१०॥

आत्महित के समस्त प्रयत्न को नष्ट कर समस्त विश्व को अन्धा करने वाले सब जीवो के मोहरूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए जो दीपक के समान हैं उन देव, शास्त्र और गुरु की मैं स्वर्ण के भाजन में स्थित जगमगाते हुए दीपकों से पूजा करता हूँ।

[ॐ ह्रीं मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।]

दुष्टाष्ट-कर्मेन्धन-पुष्ट-जाल-
संधूपने भासुर-धूमकेतून्।
धूपैर्विधूतान्य-सुगन्ध-गन्धैर्जिनेन्द्र-
सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ॥११॥

जो दुष्ट आठ कर्मरूपी ईंधन के मजबूत गट्ठर को जलाने के लिए जलती हुई आग के समान हैं उन देव, शास्त्र और गुरु की मै अन्य गन्ध द्रव्यों से अधिक सुगन्धित धूप से पूजा करता हूँ।

[ॐ ह्रीं...अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।]

क्षुभ्यद्विलुभ्यन्मनसामगम्यान

कुवादि-वादास्खलित-प्रभावान् ।

फलैरलं मोक्ष-फलाय सारैर्जिनेन्द्र-

सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ॥१२॥

क्षुब्ध और लोभी मन से जो अगम्य हैं, मिथ्यावादियों के मत पर जिनका अस्खलित प्रभाव है उन देव, शास्त्र और गुरु की मैं मोक्षफल की प्राप्ति के लिए फलों से पूजा करता हूं।

[ॐ ह्रीं मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सद्वारि-गन्धाक्षत-पुष्पजातैर्नैवेद्य-

दीपामल-धूप-धूम्रैः ।

फलैर्विचित्रैर्घन-पुण्य-योगाज्जिनेन्द्र-

सिद्धान्त-यतीन् यजेऽहम् ॥१३॥

प्रशस्त जल, चन्दन, अक्षत, पुष्पसमूह, नैवेद्य, दीप, धूम्रयुक्त, निर्मल धूप तथा अनेक फलों से महान पुण्य के कारण श्री देव, शास्त्र और गुरु की मैं पूजा करता हूँ।

[ॐ ह्रीं अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

ये पूजां जिननाथ-शास्त्र-यमिनां भक्त्या सदा कुर्वते
त्रैसंध्यं सुविचित्र-काव्य-रचनामुच्चारयन्तो नराः ।
पुण्याढ्या मुनिराज-कीर्ति-सहिता भूत्वा तपोभूषणा-
स्ते भव्याः सकलावबोध-रुचिरांसिद्धिं लभंते पराम् १४

जो पुण्यात्मा मनुष्य प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल

अनेक प्रकार से स्तुतिगान करते हुए भक्ति से देव, शास्त्र और गुरु की पूजा करते हैं वे भव्य मुनिपद धारण कर तपश्चरण से विभूषित हो केवलज्ञान से रुचिर उत्कृष्ट निर्वाण पद को प्राप्त करते हैं।

[इत्याशीर्वाद, पुष्पाञ्जलि क्षिपामि]

वृषभोऽजितनामा च सम्भवश्चाभिनन्दनः ।
सुमतिः पद्मभासश्च सुपार्श्वो जिनसत्तमः ॥१५॥
चन्द्राभः पुष्पदन्तश्च शीतलो भगवान्मुनिः ।
श्रेयांश्च वासुपूज्यश्च विमलो विमल-द्युतिः ॥१६॥
अनन्तो धर्मनामा च शान्तिः कुन्थूर्जिनोत्तमः ।
अरश्च मल्लिनाथश्च सुव्रतो नमि-तीर्थकृत ॥१७॥
हरिवंश–समुद्भूतोऽरिष्टनेमिर्जिनेश्वरः ।
ध्वस्तोपसर्ग-दैत्यारिः पार्श्वो नागेन्द्र पूजितः ।१८।
कर्मान्तकृन्महावीरः सिद्धार्थ-कुल–सम्भवः ।
एते सुरासुरौघेण पूजिता विमलत्विषः ॥१९॥
पूजिता भरताद्यैश्च भूपेन्द्रैर्भूरि–भूतिभिः ।
चतुर्विधस्य संघस्य शान्तिं कुर्वन्तु शाश्वतीम् ।२१।

निर्मल कान्ति के धारक तथा सुरो, असुरो और विपुल विभूति वाले भरत आदि चक्रवर्तियों से पूजित श्री ऋषभनाथ, अजितनाथ, सभवनाथ, अभिनन्दन नाथ, सुमति–नाथ, पद्मप्रभ, सुपार्श्वनाथ, चन्द्रप्रभ, पुष्पदन्त, भगवान् शीतलनाथ, श्रेयांसनाथ, वासुपूज्य, निर्मलकान्ति वाले विमल-नाथ, अनन्तनाथ, धर्मनाथ, शान्तिनाथ, जिनोत्तम कुन्थुनाथ,

अरनाथ, मल्लिनाथ, मुनिसुव्रतनाथ, तीर्थंकर नमिनाथ, हरिवंश मे उत्पन्न हुए जिनेश्वर अरिष्टनेमि, कमठ के उपसर्गों को ध्वस्त करने वाले और धरणेन्द्र से पूजित पार्श्वनाथ, सिद्धार्थ के कुल मे उत्पन्न हुए और कर्मों का नाश करने वाले श्री महावीर जिन मुनि, आर्यिका, श्रावक और श्राविका इस चतुर्विध संघ को शान्ति प्रदान करें ।

जिने भक्तिर्जिने भक्तिर्जिने भक्ति. सदास्तु मे ।
सम्यक्त्वमेव संसार-वारणं मोक्ष-कारणम् ।।२१।।

मेरी जिनेन्द्र देव मे सदा बार-बार भक्ति हो. क्योंकि उनकी भक्ति से होने वाला सम्यग्दर्शन ही संसार का निवारण कर मोक्ष का कारण होता है ।

[पुष्पाञ्जलि क्षिपामि ।]

श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः श्रुते भक्तिः सदास्तु मे ।
सज्ज्ञानमेव संसार–वारणं मोक्ष-कारणम् ।।२२।।

मेरी द्वादशाङ्ग श्रुत मे सदा बार-बार भक्ति हो, क्योंकि इसके निमित्त से होने वाला सम्यग्ज्ञान ही संसार का निवारण कर मोक्ष का दाता होता है ।

[पुष्पाञ्जलि क्षिपामि]

गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिर्गुरौ भक्तिः सदास्तु मे ।
चारित्रमेव संसार-वारणं मोक्ष-कारणम् ।।२३।।

मेरी गुरु मे सदा बार-बार भक्ति हो, क्योंकि इनके निमित्त से प्रकट होने वाला चारित्र ही ससार का विनाश कर मोक्ष का कारण होता है ।

[पुष्पाञ्जलि क्षिपामि ।]

देव-जयमाला

वत्ताणुट्ठाणें जणु धणदाणें पइं पोसिउ तुहुं खत्तधरु ।
तवचरणविहाणे केवलणाणें तुहुं परमप्पउ परमपरु ।।

हे ऋषभ ! युग के आदि में आपने मनुष्यों को षट् कर्मों का उपदेश दिया, भूमि आदि वितरण कर सम्पत्ति का विभाजन किया तथा राजसिंहासन से प्रजा का पालन किया इस तरह क्षात्र धर्म को सफल कर बाद मे आपने तपश्चरण किया, केवलज्ञान पाया और क्रम से अरहंत तथा सिद्ध परमात्मा बन गये ।

जय रिसह रिसीसर-णविय-पाय ।
जय अजिय जियंगय-रोस-राय ।
जय संभव संभव-कय-विओय ।
जय अहिणंदण णंदिय-पओय ।।२।।

बड़े-बड़े ऋषियो से पूज्य हे ऋषभ जिन ! आपकी जय हो। रागद्वेष को जीतने वाले हे अजितनाथ ! आपकी जय हो। जन्म-मरण को नष्ट कर देने वाले हे संभवनाथ ! आपकी जय हो। भव्य रूपी कमलो को विकसित करने वाले हे अभिनन्दन जिन ! आपकी जय हो।

जय सुमइ सुमइ-सम्मय-पयास ।
जय पउमप्पह पउमा-णिवास ।।
जय जयहि सुपास सुपास-गत्त ।
जय चंदप्पह चंदाहवत्त ।।३।।

सुमति और सम्यक्त्व का प्रकाश करने वाले हे सुमति जिन ! आपकी जय हो । लक्ष्मी के निवास स्थल हे पद्मप्रभ जिन ! आपकी जय हो । सुन्दर शरीर के धारी हे सुपार्श्व जिन ! आपकी जय हो । चन्द्रमा के समान प्रभावान् हे चन्द्रप्रभ जिन ! आपकी जय हो ।

जय पुप्फयंत दंतंतरंग ।
जय सीयल सीयल-वयण-भंग ॥
जय सेय सेय-किरणोह-सुज्ज ।
जय वासुपुज्ज पुज्जाणुपुज्ज ॥४॥

अन्तरंग का दमन करने वाले हे पुष्पदन्त जिन ! आपकी जय हो । जिनके शीतल वचन है ऐसे हे शीतल जिन ! आपकी जय हो । कल्याण रूपी किरण समूह के लिए सूर्य के समान हे श्रेयांस जिन ! आपकी जय हो । पूज्य पुरुषों में भी पूज्य हे वासुपूज्य जिन ! आपकी जय हो ।

जय विमल विमल-गुणसेढि-ठाण ।
जय जयहि अणंताणंत-णाण ॥
जय धम्म धम्म-तित्थयर संत ।
जय संति संति-विहियायवत्त ॥५॥

निर्मल गुण श्रेणि स्थान के धारक हे विमल जिन ! आपकी जय हो । अनन्त ज्ञान के धारी हे अनन्त जिन ! आपकी जय हो । धर्म तीर्थ के प्रवर्तक क्षमाशील हे धर्म जिन ! आपकी जय हो । शान्ति रूपी छत्र के धारण करने वाले हे शान्ति जिन ! आपकी जय हो ।

जय कुंथु कुंथु–पहुअंगि सदय ।
जय अर-अर-मा-हर विहिय–समय ॥
जय मल्लि मल्लिआ-दाम-गंध ।
जय मुणिसुव्वय सुव्वय-णिबंध ॥६॥

कुन्थु आदि जंतुओं पर दया करने वाले हे कुन्थु जिन ! आपकी जय हो। मुख्य रूप से लक्ष्मी के निकेतन और श्रुत के प्रणेता हे अर जिन ! आपकी जय हो। मालती के पुष्पों की माला के समान सुगन्धि वाले हे मल्लि जिन ! आपकी जय हो। सुव्रतों के कारण हे मुनि सुव्रत जिन ! आपकी जय हो।

जय णमि णमियामर-णियर-सामि ।
जय णेमि धम्म-रह-चक्क-णेमि ॥
जय पास पास–छिंदण-किवाण ।
जय वड्ढमाण जास-वड्ढमाण ॥७॥

अमर समूह के स्वामी इन्द्रों के द्वारा नमस्कार किये हे नमि जिन ! आपकी जय हो। धर्म रूपी रथ के चक्र की धुरी के समान हे नेमि जिन ! आपकी जय हो। भव रूपी पाश को छेदने के लिए कृपाण के समान हे पार्श्व जिन ! आपकी जय हो। जिनका यश सदा वर्द्धमान है ऐसे हे वर्द्धमान जिन ! आपकी जय हो।

इह जाणिय-णामहिंदुरिय-विरामहिं
परहिं वि णमिय-सुरावलिहिं ।
अणिहणहिं अणाइहिं समियकुवाइहिं
पणविवि अरहंतावलिहिं ॥८॥

इस तरह जिनके प्रसिद्ध नाम हैं, जो पाप के विनाशक हैं, सर्वोत्कृष्ट है, देव जिन्हें नमस्कार करते हैं, जो अनादि-निधन है, जिन्होने मिथ्यामतो को शान्त कर दिया है उन अरहंतो को मैं प्रणाम करता हूँ।

(ॐ ह्रीं वृषभादिमहावीरान्तचतुर्विंशतिजिनेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा)

शास्त्र-जयमाला

संपइ-सुह-कारण कम्म-वियारण
भव-समुद्द-तारणतरणं ।
जिणवाणि णमस्समि सत्ति पयासमि
सग्ग-मोक्ख-संगम-करणं ॥१॥

जो संपत्ति और सुख का कारण है, कर्मों को विदारण करने वाली है, संसार-समुद्र से पार करने के लिए नौका के समान है तथा स्वर्ग और मोक्ष के संगम का कारण है उस जिनवाणी को मैं अपनी शक्ति के अनुसार नमस्कार करता हूँ।

जिणिंद-मुहाओ विणिग्गय-तार ।
गणिंद-विगुंफिय गन्थ-पयार ॥
तिलोयहि मंडण धम्मह खाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥२॥

जिसके शब्द जिनेन्द्र के मुख से निकले हैं, जिसे गणधरो ने विविध ग्रन्थों में निबद्ध किया है, जो तीन लोक

की मण्डन रूप है और जो धर्म की खान है उस जिनवाणी को मैं सदा प्रणाम करता हूं ।

अवग्गह-ईह-अवायजुएहिं ।
सुधारणभेयहिं तिण्णि सएहिं ।।
मई छत्तीस बहु-प्पमुहाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ।।३।।

जिसमे बहु, बहुविध आदि पदार्थों के आश्रय से अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा के भेद से मतिज्ञान के ३३६ भेदो का वर्णन किया है उस जिनवाणी को मैं सदा नमस्कार करता हूं ।

सुदं पुण दोण्णि अणेय-पयार ।
सुबारह-भेय जगत्तय-सार ।।
सुरिंद-णरिंद-समुच्चिय जाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ।।४।।

श्रुतज्ञान दो प्रकार का है—अङ्गबाह्य और अङ्गप्रविष्ट। अङ्गबाह्य अनेक प्रकार का है । अङ्गप्रविष्ट १२ प्रकार का है। जो तीन जगत मे सर्वश्रेष्ठ है, इन्द्र और नरेन्द्र जिसकी पूजा करते हैं उस जिनवाणी को मैं सदा प्रणाम करता हूं।

जिणिंद -गणिंद-णरिंदह रिद्धि ।
पयासइ पुण्ण पुरा किउ लद्धि ।।
णिउग्गु पहिल्लउ एहु वियाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ।।५।।

जिसमें तीर्थङ्कर, गणधर, और चक्रवर्तियों की विभूति तथा उनके पूर्वकृत पुण्य और लब्धियो का वर्णन है वह प्रथमानुयो है। उस जिनवाणी को मै सदा नमस्कार करता हू।

जु लोय-अलोयह जुत्ति जणेइ ।
जु तिण्णि वि काल सरूव भणेइ ।।
चउग्गइ-लक्खण दुज्जउ जाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ।।६।।

जिसमे युक्तिपूर्वक लोक और अलोक का, तीनों कालों के स्वरूप का (युगो के परिवर्तन का) तथा चतुर्गतियो का वर्णन है वह दूसरा करणानुयोग है। उस जिनवाणी को मै सदा प्रणाम करता हूं।

जिणिंद-चरित्त विचित्त भणेइ ।
सुसावहि धम्मह जुत्ति जणेइ ।।
णिउग्गु वि तिज्जउ इत्थु वियाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ।।७।।

जिसमे मुनियो के विविध प्रकार के चारित्र का वर्णन है तथा जो युक्ति पूर्वक श्रावक धर्म का ज्ञान कराता है वह तीसरा चरणानुयोग है। उस जिनवाणी को मैं सदा नमस्कार करता हूँ।

सुजीव-अजीवह तच्चह चक्खु ।
सुपुण्णु वि पाव वि बंध वि मुक्खु ।।

चउत्थु णिउग्गु वि भासिय जाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥८॥

जो जीव, अजीव, पुण्य, पाप, बन्ध और मोक्ष आदि तत्त्वों के प्रकाश के लिए नेत्र के समान है वह चौथा द्रव्यानुयोग है । उस जिनवाणी को मैं सदा नमस्कार करता हूं ।

तिभेयहिं ओहि वि णाणु विचित्तु ।
चउत्थ रिजू विउलं मइ उत्तु ॥
सुखाइय केवलणाण वियाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥९॥

अवान्तर अनेक भेदों को लिये हुए अवधिज्ञान तीन प्रकार का है-देशावधि, परमावधि और सर्वावधि । चौथा मन पर्यय ज्ञान ऋजुमति और विपुलमति के भेद से दो प्रकार का है । पाँचवाँ केवलज्ञान क्षायिक ज्ञान है । इस प्रकार जिसमें वर्णन है उस जिनवाणी को मैं सदा नमस्कार करता हूँ ।

जिणिंदह णाणु जग-त्तय-भाणु ।
महातम णासिय सुक्ख-णिहाणु ॥
पयच्चउ भत्तिभरेण वियाणि ।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि ॥१०॥

भगवान जिनेन्द्र का ज्ञान तीन लोको को प्रकाशित करनेके लिए सूर्य के समान है, गाढ़ अज्ञानांधकार का विनाशक है, सुख का निधान है, ज्ञान की महिमा को जानकर भक्ति-

पूर्वक सब लोग उसकी पूजा करो। मै सदा जिनवाणी को नमस्कारकरता हूँ।

पयाणि सुबारह कोडि सयेण।
सुलक्ख तिरासिय जुत्ति-भरेण॥
सहस अट्ठावण पंच वियाणि।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि॥११॥

जिस द्वादशाङ्ग वाणी में एक सौ बारह करोड तिरासी लाख अट्ठावन हजार पाँच पद हैं मैं उस जिनवाणी को नमस्कार करता हूँ।

इक्कावण कोडिउ लक्ख अठेव।
सहस चुलसीदिय सा छक्केव॥
सढाइगवीसह गथ–पयाणि।
सया पणमामि जिणिंदह वाणि॥१२॥

जिसके एक-एक पद मे इक्यावन करोड़ आठ लाख चौरासी हजार छह सौ साढ़े इक्कीस ग्रन्थ पद (३२ अक्षर-प्रमाण अनुष्टुप् श्लोक) हैं, मैं उस जिनवाणी को सदा नमस्कार करता हूँ।

घत्ता

इह जिणवर-वाणि विसुद्धमई।
जो भवियण णिय-मण धरई॥
सो सुर-णरिंद संपइ लहई।
केवलणाण वि उत्तरई॥१३॥

इस प्रकार जो निर्मल बुद्धि का धारक भव्य प्राणी जिनवाणी को अपने चित्त में धारण करता है वह इन्द्र और नरेन्द्रों की संपत्ति प्राप्त कर और क्रम से केवलज्ञान प्राप्त कर संसार से पार उतर जाता है।

[ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भूतस्याद्वादनयगर्भितद्वादशांगश्रुत-
ज्ञानायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुरु-जयमाला

भवियह भव-तारण सोलह-कारण
अज्जवि तित्थयरत्तणहं ।
तवकरमि असंगइ दयधम्मंगइ
पालवि पंच महव्वयइं ॥१॥

तीर्थंकर पद की कारण सोलह कारण भावनायें भव्यो को संसार समुद्र से तारने वाली हैं उनका अर्जन करो। तथा दया-धर्म के अंग स्वरूप तपःकर्म, निष्परिग्रहता और पाच महाव्रतों को पालो।

वंदामि महारिसि सीलवंत,
पंचिंदिय-संजम जोगजुत्त ।
जे गारह अंगइं अणुसरंति,
जे चउदह पुव्वइं मुणिथुणंति ॥२॥

जो मुनि शीलवान् हैं, इन्द्रिय-संयमी हैं, योग सम्पन्न हैं, ११ अंग तथा १४ पूर्वों का पाठ और स्तवन करते हैं मैं उन महान ऋषियो को नमस्कार करता हूं।

पादाणुसारि—वरकुट्ठबुद्धि,

उप्पण्णु जाह आयासरिद्धि ।

जे पाणाहारी तोरणिया,

जे रुक्ख-मूलि आतावणिया ॥३॥

जिन्हें पदानुसारी, कोष्ठबुद्धि और आकाशगामिनी ऋद्धि प्राप्त हो गयी है, जो एकाशनादि तप करते है, वृक्ष के नीचे या शिला पर्वतादि पर जो वर्षा अथवा आतापन योग धारण करते हैं।

जे मउणधारि चन्दायणिया,

जे जत्थत्थ वणि णिवासणिया ।

जे पंच-महव्वय धरणधीर,

जे समिदि-गुत्ति पालणहि वीर ॥४॥

जो मौन से चन्द्रायण व्रत को धारण करते है, वन मे जहाँ-तहाँ निवास करते हैं, जो पाँच महाव्रतो को धारण करने मे धीर है तथा पाँच समिति और तीन गुप्तियो को वीरता के साथ पालन करते है।

जे वड्ढहि देह विरत्तचित्त,

जे राय-रोस-भय-मोह-चित्त ।

जे कुगइहि सवरु विगयलोह,

जे दुरियविणास अकामकोह ॥५॥

जो देह से उदासीन रहते हैं; राग, रोष, भय और मोह से रहित हैं, कुगति का निवारण करते हैं, लोभ से रहित है और काम-क्रोधादि पापो का विनाश करते हैं।

जे जल्लमलत्तणलित्त गत्त,

आरम्भ-परिग्गह जे विरत्त ।

जे तिण्णकाल बाहर गमंति,

छट्ठट्ठम-दसमइं तव चरंति ॥६॥

पसीना, धूल और तृण से जिनका शरीर लिप्त रहता है, जो आरम्भ और परिग्रह से विरक्त है, तीन समय जो बाहर गमन करते है, बेला, तेला, चौला आदि तप करते हैं।

जे इक्कगास दुइगास निंति,

जे णीरस-भोयणि रइ करंति ।

ते मुणिवर वंदउं ठियमसाणे,

जे कम्म डहइ वर सुक्कझाणे ॥७॥

जो एक या दो ग्रास आहार करते है, रुचिपूर्वक नीरस भोजन को भी करते है और जो श्मशान मे स्थित होकर उत्तम शुक्ल ध्यान से कर्मो को नष्ट करते है उन मुनिवरो की मै वन्दना करता हूँ।

बारहविह–संजम जे धरंति,

जे चारिउ विकहा परिहरंति ।

बावीस परीसह जे सहंति,

संसार-महण्णउ ते तरंति ॥८॥

जो बारह प्रकार का संयम धारण करते हैं, चारों प्रकार की विकथाओं का त्याग कर देते हैं और जो बाईस परिषहो को सहन करते है वे मुनि ससार रूपी महासमुद्र को पार करते हैं

जे धम्मबुद्धि महियलि थुणंति,

जे काउस्सग्गे णिसि गमंति ।

जे सिद्धि-विलासणि अहिलसंति,

जे पक्ख-मासि आहारु लिंति ।।९।।

जिन धर्मात्माओ की पृथ्वी पर सब स्तुति करते हैं, जो कायोत्सर्ग मे ही रात्रि व्यतीत कर देते हैं, मुक्तिरूपी स्त्री के इच्छुक हैं और पन्द्रह दिन या एक माह मे आहार लेते है ।

गोदूहणि जे वीरासणिया,

जे धणुह-सेज्ज-वज्जासणिया ।

जे तव-बलेण आयासि जंति,

जे गिरि-गुह-कंदरि-विवरि थंति ।।१०।।

जो सदा गोदोहन आसन, वीरासन, धनुषासन, शय्यासन तथा बज्रासन से ध्यान लगाते है, जो तप के प्रभाव से आकाश मे गमन करते हैं और जो पर्वतो की गुफा-कन्दराओ मे और विवरो मे निवास करते हैं ।

जे सत्तु-मित्त समभाव चित्त,

ते मुणिवर वंदउ दिढ-चरित्त ।

चउवीसह गंथह जे विरत्त,

ते मुणिवर वंदउ जग-पवित्त ।।११।।

जिनका चित्त शत्रु और मित्र मे समभाव रहता है उन चारित्र मे दृढ़ मुनियों को मैं नमस्कार करता हूं । जो चौबीस प्रकार के परिग्रह से विरक्त हैं, जगत मे पवित्र उन मुनियों की मैं वन्दना करता हूं ।

जे सज्झाय-झाणेक्कचित्त,

वंदामि महारिसि मोक्खपत्त ।

रयण-त्तय-रंजिय सुद्ध-भाव,

ते मुणिवर वंदउ ठिदि-सहाव ।।१२।।

जो एकाग्र चित्त से ध्यान मे स्थिर रहते हैं, मोक्ष के पात्र हैं उन महाऋषियो की मैं वन्दना करता हूं । जिनके रत्न त्रय से युक्त शुद्ध भाव है उन स्थिर स्वभावी मुनिवरों की मैं वन्दना करता हूं ।

घत्ता

जे तव-सूरा संजम-धीरा

सिद्ध-वधू-अणुराईया ।

रयण-त्तय-रंजिय कम्मह-गंजिय

ते रिसिवर मय झाईया ।।१३।।

जो तपश्चरण मे शूरवीर हैं, संयम धारण करने में धीर हैं, मुक्ति वधू के अनुरागी हैं, रत्नत्रय से युक्त हैं, कर्म के विनाशक हैं उन श्रेष्ठ महर्षियो का मैं स्मरण करता हूँ ।

[ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रादिगुणविराजमानाचार्योपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

विद्यमान-विंशति-तीर्थंकर-पूजा

श्रीमज्जम्बू-धातकि-पुष्करार्द्ध-
द्वीपेषूच्चैर्ये विदेहाः शराः स्युः ।
वेदा वेदा विद्यमाना जिनेन्द्राः
प्रत्येकं तांस्तेषु नित्यं यजामि ।।

जम्बूद्वीप, धातकीखण्ड द्वीप और पुष्करार्द्ध द्वीप मे पॉच विदेह है । प्रत्येक विदेह मे चार-चार तीर्थङ्कर है। उन प्रत्येक तीर्थङ्करो की मै नित्य पूजा करता हूँ ।

[ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा अत्र अवतरत २ संवौषट् ।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठ: ठ: ।
ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करा अत्र मम सन्निहिता भवत भवत वषट् ।

अष्टकम्

सुरनदी-जल-निर्मल-धारया
प्रवर-कुंकुम-चन्द्रसुसारया ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान्
परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ।।

मै उत्तर केशर और कपूर से सुगंधित गंगा के जल की निर्मल धारा से सम्पूर्ण मंगल और इच्छित पदार्थों को देने वाले महान् बीस तीर्थङ्करो की पूजा करता हूँ ।

[ॐ ह्रीं सीमन्धर-जुगमन्धर-बाहु-सुबाहु-सञ्जातक-स्वयंप्रभ-ऋषभानन-अनंतवीर्य-सूरप्रभ-विशालकीर्ति-वज्रधर-चन्द्रानन-

भद्रबाहु-भुजङ्गम-ईश्वर-नेमिप्रभ-वीरसेन-महाभद्र-देवयशोऽ-जितवीर्येति विद्यमानविंशतितीर्थंकरेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

मलय-चन्दन-केशर-वारिणा

निखिल जाड्य-रुजातप-हारिणा ।

सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान्

परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ।।

मै सम्पूर्ण जडता, रोग और आतप को दूर करने वाले मलयाचल के चन्दन और केशर के जल से सभी मङ्गल और इच्छित पदार्थों के दाता महान् बीस तीर्थङ्करों की पूजा करता हूं ।

[ॐ ह्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः संसारतापविनाशनाय चण्दन निर्वपामीति स्वाहा ।]

सरल-तन्दुलकैरतिनिर्मलैः

प्रवर-मौक्तिक-पुञ्ज-बहूज्ज्वलैः ।

सकल-मङ्गल-वाञ्छित दायकान्

परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ।।

उत्तम मोतियो के पुञ्ज के समान अत्यन्य उज्ज्वल और सरल अति निर्मल, चावलो के द्वारा सभी मंगल और इच्छित पदार्थों के दाता महान् बीस तीर्थङ्करो की मैं पूजा करता हूं ।

[ॐ ह्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।]

बकुल-केतकि-चम्पक-पुष्पकैः

परिमलागत-षट्पद-वृन्दकैः ।

सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान्

परम विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥

जिन पर सुगन्ध से भ्रमर गुञ्जार रहे हैं ऐसे मौलश्री, केतकी और चम्पा के फूलो से सभी मंगल और अभीष्ट के दाता महान बीस तीर्थङ्करो की मैं पूजा करता हूं ।

[ॐ ह्रीं 'विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्य कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रवर-मोदक-खज्जक-पूपकैः

वरसुमण्डक-सूप-शुभौदनैः ।

सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान

परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ॥

श्रेष्ठ लड्डू, खाजे, पूए, पूरी दाल और भात आदि से सभी मगल और वाञ्छित पदार्थों के दाता महान् बीस तीर्थङ्करो की मै पूजा करता हूँ ।

[ॐ ह्रीं "विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

अतिसुदीप्तिमयैर्वरदीपकैर्विमल-

काञ्चन-भाजन-संस्थितैः।

सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान्

परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ।

स्वच्छ सोने के पात्र में रखे हुए अत्यन्त प्रकाशमान सुन्दर दीपकों के द्वारा सभी मङ्गल और वाञ्छित पदार्थों के दाता महान् बीस तीर्थङ्करों की मैं पूजा करता हूँ।
[ॐ ह्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा]

अगुरु-चन्दन-मुख्य-सुधूपकैः
प्रचुर-धूप-ततामलगन्धकैः ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान्
परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ।।

जिनके धुएँ से सब जगह निर्मल सुगन्धि फैल रही है ऐसी अगरु, चन्दन आदि की खास धूपों के द्वारा सभी मङ्गल और वाञ्छित पदार्थों के दाता महान् बीस तीर्थङ्करों की मैं पूजा करता हूं।
[ॐ ह्री विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यः कर्माष्टदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रवर-पूग-लवङ्ग-सदाम्रकैः प्रचुर-
दाडिम-मोच-सुचोचकैः ।
सकल-मङ्गल-वाञ्छित-दायकान्
परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ।।

मैं उत्तम सुपारी, लौंग, आम, बहुत से दाडिम, केला और नारियलों के द्वारा मङ्गल वाञ्छित पदार्थों के दाता महान बीस तीर्थंकरों की पूजा करता हूं।
[ॐ ह्रीं 'विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जल-सुगन्ध-प्रसून-सुतन्दुलैश्चरु-
प्रदीपक-धूप-फलादिभिः ।
सकल-मंगल-वाञ्छित-दायकान्
परम-विंशति-तीर्थपतीन् यजे ।।

जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल आदि के द्वारा सकल मङ्गल और वाञ्छित पदार्थों के दाता महान् बीस तीर्थंकरो की मैं पूजा करता हूँ।

[ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जयमाला

श्रीबीस-जिणेसर विहरमाण,
पणमामि पंचसय-धणुपमाण ।
जे भविय-कमल पडिबोहयंत,
विहरंति विदेहे तम हरंत ।।१।।

पाँच सौ धनुष ऊँचा जिनका शरीर है, जो विदेह-क्षेत्र मे भव्य रूपी कमलों को प्रतिबोधित करते हुए तथा अज्ञानान्धकार को दूर करते हुए बिहार कर रहे हैं उन बीस विहरमाण तीर्थंकरो को मैं प्रणाम करता हू ।

सीमंधर पणवों जिणवरिंद,
जुगमंधर वंदों दुह-दलिंद ।
हों वंदों बाहु-सुबाहुसामि,
जंबू-विदेह जे सिद्धगामि ।।२।।

मैं सीमन्धर जिनेन्द्र को नमस्कार करता हूँ, दुःख का दलन करने वाले युगमन्धर स्वामी को नमस्कार करता हूँ, बाहु और सुबाहु स्वामी को नमस्कार करता हूं। ये सब जम्बू-द्वीप के विदेह क्षेत्र से मोक्ष जाने वाले हैं।

संजाइ सयंपहु जिण जयंति,
ऋषभानन धम्म पयासयंति।
तह णंतवीर सूरप्प होइ,
वंदो विसाल वज्जरधरोइ ॥३॥
चंदानन अट्ठम–दीव वीर,
हौं पणऊँ पत्त जे भवह तीर।
तहं पुइकरार्ध जिण भद्दबाहु,
भुय्रंगम ईसर जगइ णाहु ॥४॥
णेमिप्पह पणवों वीरसेण,
महाभद्द भवंबुहि तरिउ जेण।
मै पणवों देवजस सुभाव,
जिण अजियवीर जिय मुक्कपाव ॥५॥

संजात और स्वयंप्रभ जिनेन्द्र जयवंत रहें, धर्म का प्रकाश करने वाले ऋषभानन, अनन्तवीर्य, सूरप्रभ, विशाल कीर्ति, वज्रधर, तथा आठवें चन्द्रानन को मैं प्रणाम करता हूॅ। ये धातकीखंड के विदेह-क्षेत्र से मोक्षगामी हैं। पुष्करार्द्ध द्वीप के विदेह क्षेत्र से मोक्ष जाने वाले श्री भद्रबाहु, भुजङ्गम और जगत के नाथ ईश्वर जिनेन्द्र, नेमिप्रभ, वीरसेन तथा संसार–समुद्र से तारने वाले श्री महाभद्र जिनेन्द्र को मैं

नमस्कार करता हूँ। मैं देवयश तथा पाप से मुक्त श्री अजित वीर्य जिनेन्द्र को प्रणाम करता हूँ।

घत्ता

ए वीर जिणेसर णमिय सुरेसर
विहरमाण मइ संथुणियं।
जे भणहिं भणावहिं अरु मन भावहिं
ते णर पावहिं परमपयं ॥६॥

इस प्रकार सुर-असुरो से नमस्कृत इन विहरमाण बीस तीर्थङ्करो की मैने स्तुति की है। इस जयमाला को जो पढते हैं, पढाते हैं अथवा मन मे स्मरण करते है वे मनुष्य परमपद मोक्ष को प्राप्त करते हैं।

[ॐ ह्रीं विद्यमानविंशतितीर्थङ्करेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा]

कृत्रिमाकृत्रिम जिनचैत्य-पूजार्घ्य

कृत्याकृत्रिम-चारु-चैत्यनिलयान् नित्यं त्रिलोकीगतान्
वन्दे भावन-व्यन्तरद्युतिवरान् स्वर्गामरावासगान् ।।
सद्गन्धाक्षत-पुष्प-दाम—चरुकैः सद्दीप—धूपैः फलै—
र्द्रव्यैर्नीरसुखैर्यजामि सततं दुष्कर्मणां शान्तये ।।१।।

त्रिलोक सम्बन्धी कृत्रिमाकृत्रिम सुन्दर चैत्यालयो की तथा भवन वासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी देवों के चैत्यालयो की मै सदा वन्दना करता हूँ और दुष्ट कर्मों की शान्ति के लिए पवित्र जल, गन्ध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप तथा फल के द्वारा उनकी पूजा करता हूँ।

[ॐ ह्री कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयसम्बन्धिजिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।

वर्षेषु वर्षान्तर—पर्वतेषु
नन्दीश्वरे यानि च मन्दरेषु ।
यावन्ति चैत्यायतनानि लोके
सर्वाणि वन्दे जिनपुङ्गवानाम् ।।२।।

क्षेत्रों मे, उनके बीच के पर्वतो पर, नन्दीश्वर मे तथा सुमेरु पर बने जितने जिन-चैत्यालय है उन सबकी मै वंदना करता हूं

अवनि—तल-गतानां कृत्रिमाकृत्रिमाणां
वन-भवन-गतानां दिव्य—वैमानिकानाम् ।
इह मनुज—कृतानां देवराजार्चितानां
जिनवर-निलयानां भावतोऽहं स्मरामि ।।३।।

पृथ्वी के नीचे, व्यंतर, भवनवासी और कल्पवासी देवो के यहाँ तथा इस मध्य लोक मे मनुष्यो के द्वारा बनाये गये देव तथा राजाओ से पूजित, जितने कृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय हैं उन सबका मै भाव पूर्वक स्मरण करता हूँ।

जम्बू-धातकि-पुष्करार्ध-

वसुधा-क्षेत्र-त्रये ये भवा-

श्चन्द्राम्भोजशिखण्डिकण्ठ-

कनक-प्रावृड्घनाभा जिनाः ।

सम्यग्ज्ञान-चरित्र--लक्षणधरा

दग्धाष्ट--कर्मेन्धनाः ।

भूतानागत-वर्तमान--समये

तेभ्यो जिनेभ्यो नमः ॥४॥

जम्बूद्वीप, धातकीखड और पुष्करार्द्ध इन अढ़ाई द्वीप के (भरत, ऐरावत और विदेह इन) तीन क्षेत्रो मे श्वेत, लाल नील, पीत और कृष्णवर्ण वाले, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यक्चारित्र के धारी और कर्म रूपी ईंधन को जलाने वाले जितने भूत, भावी और वर्तमान तीर्थङ्कर है उन सबको मेरा नमस्कार है।

श्रीमन्मेरौ कुलाद्रौ रजतगिरिवरे

शाल्मलौ जम्बूवृक्षे

वक्षारे चैत्यवृक्षे रतिकर-

रुचके कुण्डले मानुषाङ्के ।

इष्वाकारेऽञ्जनाद्रौ दधिमुख-

शिखरे व्यन्तरे स्वर्गलोके

ज्योतिर्लोकेऽभिवन्दे भवन–

महितले यानि चैत्यालयानि ।।५।।

शोभासंयुक्त सुमेरू, कुलाचल, वैताढ्य पर्वत, शाल्मली-वृक्ष, जम्बूवृक्ष, वक्षारगिरि, चैत्यवृक्ष, रतिकरगिरि, रुचक-गिरि, कुण्डलगिरि, मानुषोत्तर पर्वत, इष्वाकारगिरि, अञ्जन-गिरि, दधिमुख पर्वत, व्यतर लोक, स्वर्गलोक, ज्योतिर्लोक और भवन वासियो के पाताल लोक मे जितने चैत्यालय हैं उन सबको मै नमस्कार करता हूँ ।

द्वौ कुन्देन्दु–तुषार–हार–धवलौ द्वाविन्द्रनील–प्रभौ

द्वौ बन्धूक–सम-प्रभौ जिनवृषौ द्वौ च प्रियङ्गु प्रभौ ।

शेषाः षोडश जन्म–मृत्यु-रहिताः संतप्त–हेम-प्रभा–

स्ते संज्ञान-दिवाकराः सुर-नुताः सिद्धिं प्रयच्छंतु नः ।६।

कुन्द, पुष्प, चन्द्रमा, बर्फ एवं मुक्ताहार के समान श्वेत दो तीर्थङ्कर, इन्द्र नीलमणि के समान नीलवर्ण दो तीर्थ-कर, बन्धूक पुष्प के समान लाल वर्ण वाले दो तीर्थंकर, प्रियगु पुष्प के समान हरित वर्ण वाले दो तीर्थंकर, बाकी के स्वर्ण के समान पीतल वर्ण वाले सोलह तीर्थंकर जो जन्म-मृत्यु से रहित है, सम्यग्ज्ञान रूपी सूर्य हैं और देवो से वन्द नीय हैं, हमे सिद्धि प्रदान करे।

[ॐ ह्रीं त्रिलोकसम्बन्धि–कृत्रिमाकृत्रिमचैत्यालयेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

इच्छामि भंते ! चेइयभत्ति–काउसग्गो कओ

तस्सालोचेउं । अहलोय–तिरियलोय–उड्ढलोयम्मि

किट्टिमाकिट्टिमाणि जाणि जिणचेइयाणि ताणि सव्-
वाणि तीसु वि लोएसु भवणवासियवाणविंतर-जोइ-
सिय-कप्पवासिय त्ति चउव्विहा देवा सपरिवारा
दिव्वेण गधेन दिव्वेण पुप्फेण दिव्वेण धूवेण दिव्वेण
चुण्णेण दिव्वेण वासेण दिव्वेण ण्हाणेण णिच्चकालं
अच्चंति पुज्जति बदंति णमस्संति । अहमवि इह
संतो तत्थ सताइ णिच्चकालं अच्चेमि पुज्जेमि वदामि
णमंसामि । दुक्खक्खओ कम्मक्खओ बोहिलाहो
सुगइगमणं समाहिमरण जिणगुणसंपत्ती होउ मज्झं ।

हे भगवन ! चैत्यभक्ति और तत्सम्बन्धी कायोत्सर्ग करके मै उसकी आलोचना करना चाहता हूँ। अधोलोक, मध्य-लोक और ऊर्ध्वलोक मे जितनी कृत्रिम और अकृत्रिम जिन-प्रतिमाएँ है उन सबकी भवन वासी, व्यन्तर, ज्योतिष्क और कल्पवासी ये चारो निकायों के देव तीनो लोको मे दिव्य गन्ध से, दिव्य पुष्प से, दिव्य धूप से, दिव्य चूर्ण से, दिव्य सुगंधित द्रव्य से, दिव्य अभिषेक से अर्चना करते है, पूजा करते है, वन्दना करते है नमस्कार करते है। मै भी यहीं से तत्रस्थ प्रति-माओं की सदा अर्चा करता हू, पूजा करता हू, वन्दना करता हूँ, और नमस्कार करता हूँ। मेरे दुःख का क्षय हो, कर्मों का क्षय हो, बोधि का लाभ हो, सुगति मे गमन हो समाधि मरण हो और जिनगुण सम्पत्ति हो।

अथ पौर्वाह्निक (माध्याह्निक) (आपराह्निक) देववन्द-नाया पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकलकर्मक्षयार्थं भावपूजा-वन्दना-स्तवसमेतं श्रीपञ्च-महागुरुभक्तिकायोत्सर्गं करोम्यहम् ।

[अब मैं प्रात' मध्यान्ह और सांयकाल की देव वन्दना में पूर्व आचार्य परम्परा के अनुसार सम्पूर्ण कर्मों के क्षय के लिए भाव पूजा, वन्दना और स्तुति के साथ पॉच महागुरु-भक्ति सम्बन्धी कायोत्सर्ग करता हूं ।]

ताव कायं पावकम्मं दुच्चरियं वोस्सरामि ।

णमो अरिहंताणं णमो सिद्धाणं णमो आयरियाणं ।

णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्वसाहूणं ।

कायोत्सर्ग के करते हुए मैं सब पाप कर्म और दुश्चरित्र के कारण शरीर से ममता छोडता हूं ।

अरिहन्तो को नमस्कार हो, सिद्धो को नमस्कार हो, आचार्यों को नमस्कार हो, उपाध्यायो को नमस्कार हो और लोक मे सब साधुओ को नमस्कार हो ।

सिद्धपूजा (द्रव्याष्टक)

ऊर्ध्वाधोरयुतं सबिन्दु सपरं ब्रह्मस्वरावेष्टितं
वर्गापूरित-दिग्गताम्बुज-दलं तत्सधि-तत्त्वान्वितम् ।
अन्तःपत्र-तटेष्वनाहतयुतं ह्रींकार—सवेष्टितं
देव ध्यायति यः स मुक्ति-सुभगो वैरीभ-कण्ठीरवः ।।

ऊपर और नीचे रेफ से युक्त तथा बिन्दु सयुक्तहकार लिखे अर्थात् 'ह्री' लिखे। उसे ब्रह्मस्वर से वेष्टित करे। दिग्गत कमल के आठ पत्रो पर ८ वर्ग लिखे। और पत्रो की आठो सन्धियो मे 'तत्त्व' अर्थात् 'णमो अरहताणं' लिखे। पत्रो के भीतर किनारो पर ओकार लिखे। फिर सम्पूर्ण मन्त्र को ह्रींकार की तीन रेखाओ से वेष्ठित करे। यह सिद्ध यन्त्र है। इस देव का जो चिन्तवन करता है वह मुक्ति का भोक्ता कर्म रुपी हाथी के नाश के लिए सिह के समान होता है।

[ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् । अत्र अतवर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ. ठः ।

ॐ ह्री श्रीसिद्धचक्राधिपते सिद्धपरमेष्ठिन् ! अत्र मम सन्नि-हितो भव भव वषट् ।]

निरस्त-कर्म-सम्बन्ध-सूक्ष्मं नित्यं निरामयम् ।
वन्देऽहं परमात्मानममूर्तमनुपद्रवम् ।।२।।

कर्म सम्बन्ध से रहित सूक्ष्म, नित्य, निरामय, अमूर्त और शान्त सिद्ध परमात्मा को मैं नमस्कार करता हू।

[सिद्धयन्त्रस्थापनम्]

सिद्धौ निवासमनुग परमात्म-गम्यं
हान्यादि-भाव-रहितं भव-वीत-कायम् ।
रेवापगा-वर-सरो-यमुनोद्भवानां
नीरैर्यजे कलशगैर्वर-सिद्ध-चक्रम ।।३।।

सिद्धालय मे जिनका क्रम से निवास होता रहता है, जो परमात्मा के द्वारा जानने योग्य हैं, हीनाधिक धर्म रहित है ससार और शरीर जिनका छूट गया है उन सिद्ध समूह की रेवा नदी, सुन्दर तालाब और यमुना के जल से मै पूजा करता हूं।

[ॐ ह्रीं क्षायिकसम्यक्त्व-अनन्तज्ञान-अनन्तदर्शन-अनन्त-वीर्य-अगुरुलघुत्व-अवगाहनत्व-सूक्ष्मत्व-निराबाधत्वगुणसम्पन्न-सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।]

आनन्द-कन्द-जनकं घनं-कर्म-मुक्तं
सम्यक्त्व-शर्म-गरिमं जननार्ति-वीतम् ।
सौरभ्य-वासित-भुवं हरि-चन्दनानां
गन्धैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ।।४।।

महान सुख के देने वाले, घनकर्मों से रहित, सम्यक्त्व और सुख से परिपूर्ण तथा जन्म की पीडा से रहित श्रेष्ठ सिद्ध समूह की मै पृथ्वी को सुगन्धित करने वाले सुगन्धित हरिचन्दन से पूजा करता हूं।

[ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सर्वावगाहन-गुणं सुसमाधि-निष्ठं
सिद्धं स्वरूप-निपुणं कमलं विशालम् ।
सौगन्ध्य-शालि-वनशालि-वराक्षतानां
पुञ्जैर्यजे शशि-निभैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ।।५।।

जो सबको अवगाहन देने रूप गुण से संयुक्त है, उत्तम समाधि में स्थित है, सिद्ध है स्वरूप मे निपुण है, कृतकृत्य है और विशाल है उन श्रेष्ठ सिद्धों की मैं सुगन्धित शालि-वन के धान्य से निकले हुए श्रेष्ठ अक्षतो के चन्द्रमा के समान स्वच्छ पुञ्ज से पूजा करता हूँ ।

[ॐ ह्रीं 'सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा ।]

नित्यं स्वदेह-परिमाणमनादिसंज्ञं
द्रव्यानपेक्षममृत मरणाद्यतीतम् ।
मन्दार-कुन्द-कमलादि-वनस्पतीनां
पुष्पैर्यजे शुभतमैर्वर-सिद्ध-चक्रम ।।६।।

सदा अपने अन्तिम शरीर के बराबर रहने वाले 'सिद्ध' यह अनादि संज्ञा धारण करने वाले, अन्य द्रव्य की अपेक्षा से रहित अमृत स्वरूप तथा जन्म मरण से रहित श्रेष्ठ सिद्ध समूह की मै मन्दार, कुन्द और कमल आदि वनस्पति के पुष्पों से पूजा करता हूं ।

[ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने कामबाण विध्वंसनाय निर्वपामीति स्वाहा ।]

उर्ध्व-स्वभाव-गमनं सुमनो-व्यपेतं

ब्रह्मादि-बीज-सहितं गगनावभासम् ।

क्षीरान्न-प्राज्य-वटकं रस-पूर्ण-गर्भ-

नित्यं यजे चरुवरैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ।।७।।

जो उर्ध्वगमन-स्वभाव वाले हैं, मन से रहित हैं, आत्मा के स्वाभाविक मूल गुणो से युक्त हैं, आकाश के समान भासित होने वाले हैं उन श्रेष्ठ सिद्धों की दूध, अन्न और घी से बने हुए रसपूर्ण बड़ो से मै सदा पूजा करता हूं।

[ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने क्षुधारोग-विध्वंसनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

आतङ्क-शोक-भय-रोग-मद प्रशान्तं

निर्द्वन्द्व-भाव-धरणं महिमा निवेशम् ।

कर्पूर-वर्ति-बहुभिः कनकावदात-

दीपैर्यजे रुचिवरैर्वर-सिद्ध-चक्रम ।।८।।

जिन्होंने आतंक, शोक, भय, रोग और अभिमान को नष्ट कर दिया है जो निर्द्वन्द्व भाव से युक्त हैं और महिमा के स्थान हैं उन श्रेष्ठ सिद्धो की कपूर और वर्तिकाबहुल स्वर्ण दीपको से मै पूजा करता हूं।

[ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा।]

पश्यत्समस्त-भुवनं युगपन्नितान्तं

त्रैकाल्य-वस्तु-विषये निबिड-प्रदीपम् ।

सद्द्रव्य-गन्ध-घनसार-विमिश्रितानां
धूपैर्यजे परिमलैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥९॥

जो एक साथ सम्पूर्ण संसार को पूरी तरह से जानते है, और तीन काल की वस्तुओ के प्रकाशित करने के लिए दीपक के समान है उन श्रेष्ठ सिद्धो की सुगन्धित द्रव्य और और कर्पूर मिश्रित धूप से मै पूजा करता हू।

[ॐ ह्री सिद्धिचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।]

सिद्धासुरादिपति-यक्ष-नरेन्द्र-चक्रै-
र्ध्येयं शिवं सकल-भव्य-जनैः सुवन्द्यम् ।
नारङ्गि-पूग-कदली-फल-नारिकेलैः
सोऽहंयजे वरफलैर्वर-सिद्ध-चक्रम् ॥१०॥

सिद्ध, असुर और मनुष्यो के अधिपति जिनका सदा ध्यान करते है, जो शिव स्वरूप है और सकल भव्य पुरुषो द्वारा वन्दनीय है उन श्रेष्ठ सिद्धो की नारंगी, सुपारी, केला और नारियल आदि श्रेष्ठ फलो से मै पूजा करता हूँ।

[ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।]

गन्धाढ्य सुपयो मधुव्रत-गणैः सङ्गं वरं चन्दनं
पुष्पौघं विमलं सदक्षत-चयं रम्यं चरुं दीपकम् ।
धूप गन्धयुतं ददामि विविधं श्रेष्ठं फलं लब्धये
सिद्धानां युगपत्क्रमाय विमलं सेनोत्तरं वांछितम ।११।

मैं विमलसेन सुगन्धित जल, भौंरे जिस पर मंडरा रहे हैं ऐसा श्रेष्ठ चन्दन, निर्मल फूल और अक्षत, सुन्दर नैवेद्य, दीप, सुगन्धित धूप, विविध प्रकार के श्रेष्ठ फल, इन सबको सिद्धो के चरणो मे इष्ट अर्थ की सिद्धि के लिए एक साथ चढाता हूं।

[ॐ ह्रीं सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

ज्ञानोपयोगविमलं विशदात्मरूपं
सूक्ष्म-स्वभाव-परमं यदनन्तवीर्यम् ।
कर्मौघ-कक्ष-दहन सुख-सस्य-बीजं
वन्दे सदा निरुपमं वर-सिद्ध-चक्रम् ॥१२॥

जो ज्ञानोपयोग से विमल है फिर भी जिनका स्वरूप निर्मल है। अत्यन्त सूक्ष्म स्वभावी है फिर भी जो अनन्त शक्तिमान हैं। कर्म समूह रूपी वन को जलाने के लिए अग्नि है फिर भी जो सुख रूपी धान्य के बीज है उन उपमा रहित श्रेष्ठ सिद्ध चक्र को मै नमस्कार करता हूँ।

कर्माष्टक–विनिर्मुक्तं मोक्ष-लक्ष्मी-निकेतनम् ।
सम्यक्त्वादि-गुणोपेतं सिद्धचक्र नमाम्यहम् ॥१३॥

आठ कर्मों से रहित मोक्ष-लक्ष्मी के मन्दिर, और सम्यक्त्वादि आठ गुणो से युक्त सिद्ध समूह को मैं नमस्कार करता हूं।

[ॐ ह्री " सिद्धचक्राधिपतये सिद्धपरमेष्ठिने महार्घं निर्वपामीति स्वाहा।]

त्रैलोक्येश्वर-वन्दनीय-चरणाः प्रापुः श्रियं शाश्वतीं ।
यानाराध्य निरुद्ध-चण्ड-मनसः सन्तोऽपि तीर्थंकरा ।
सत्सम्यक्त्व-विबोध-वीर्य-विशदाव्याबाधताद्यैर्गुणै-
र्युक्तांस्तानिह तोष्टवीमि सततं सिद्धान् विशुद्धोदयान्

तीन लोक के बडे-बड़े शक्तिशाली जीव जिनके चरणों की वन्दना करते है वे तीर्थङ्कर भी एकाग्रचित्त से जिनकी आराधना कर मोक्ष लक्ष्मी को प्राप्त हुए, जो क्षायिक सम्यक्त्व अनन्त ज्ञान, अनन्त वीर्य, और निर्मल अव्याबाध आदि गुणो के धारी हैं उन विशुद्ध उदय से सम्पन्न सिद्धो की मै सदा बार-बार स्तुति करता हूँ।

(पुष्पांजलि क्षिपामि)

जयमाला

विराग सनातन शान्त निरंश,
निरामय निर्भय निर्मल हंस ।
सुधाम विबोध-निधान विमोह,
प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।

हे वीतराग, सनातन, शान्त, अखण्ड, नीरोग, निर्भय निर्मल, श्रेष्ठ, उत्तम स्थान, ज्ञान के भण्डार और मोह रहित विशुद्ध सिद्ध समूह आप हम पर प्रसन्न हो।

विदूरित-संसृति-भाव निरङ्ग,
समामृत-पूरित देव विसङ्ग ।

अबन्ध कषाय-विहीन विमोह,

प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ॥

हे सासारिक भावो को नष्ट करने वाले, शरीर रहित, समता रूपी अमृत से ओत-प्रोत, देव स्वरूप, सग रहित, बन्ध रहित, कपाय रहित तथा मोह से रहित विशुद्ध सिद्ध समूह! आप हम पर प्रसन्न हो।

निवारित-दुष्कृत-कर्म-विपाश,

सदामल-केवल-केलि-निवास ।

भवोदधि-पारग शान्त विमोह,

प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ॥

हे पाप और कर्म रूपी जाल को नष्ट करने वाले, सदा निर्मल केवल ज्ञानकी केलिके निकेतन, संसार रूपी समुद्र को पार करने वाले, शान्त और मोह रहित विशुद्ध सिद्ध समूह आप हम पर प्रसन्न हो।

अनन्त-सुखामृत-सागर-धीर,

कलङ्क-रजो-मल-भूरि समीर ।

विखण्डित-काम विराम विमोह,

प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ॥

हे अनन्त सुख रूपी अमृत के समुद्र, धीर, भावकर्म, द्रव्य कर्म और नो कर्म को उडाने के लिए विपुल वायु स्वरूप काम को नष्ट करने वाले, अपने स्वरूप मे विशेप रूप से रमण करने वाले और निर्मोही विशुद्ध सिद्ध समूह! आप हम पर प्रसन्न हों।

विकार–विवर्जित तर्जित–शोक,

विबोध-सुनेत्र-विलोकित-लोक ।

विहार विराव विरङ्ग विमोह,

प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध–समूह ।।

हे विकार रहित, शोक को तर्जित करने वाले, ज्ञान रूपी उत्तम नेत्र से संसार को देखने वाले, भार रहित, शब्द रहित, वर्ण रहित और निर्मोही विशुद्ध सिद्ध समूह आप हम पर प्रसन्न हो।

रजोमल-खेद–विमुक्त विगात्र,

निरन्तर नित्य सुखामृत–पात्र ।

सुदर्शन-राजित नाथ विमोह,

प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध -समूह ।।

हे कर्म मल के खेद से रहित, अशरीरी, सब प्रकार के व्यवधानो से पारगत, नित्य, सुख रूपी अमृत के पात्र उत्तम सम्यक्त्व से सुशोभित, सब के स्वामी और मोह रहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हो।

नरामर-वन्दित निर्मल-भाव,

अनन्त-मुनीश्वर-पूज्य-विहाव ।

सदोदय विश्व महेश विमोह,

प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध -समूह ।।

हे मनुष्य और देवो के द्वारा पूज्य निर्मल स्वभाव वाले, अनन्त बड़े बड़े मुनियो से पूज्य, हाव भाव आदि

विकारो से रहित, सदा उदय शील, विश्वस्वरूप, महेश और मोह रहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हो।

विदम्भ वितृष्ण विदोष विनिद्र,
परापर शङ्कर सार वितन्द्र ।
विकोप विरूप विशङ्क विमोह,
प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।

हे दम्भ रहित, तृष्णा रहित, दोष रहित, निद्रा रहित, परमोत्कृष्ट, सुख देने वाले, सार रूप, तन्द्रा रहित, कोप रहित, रूप रहित, शंका रहित और मोह रहित विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हो।

जरा-मरणोज्झित वीत-विहार,
विचिन्तित निर्मल निरहङ्कार ।
अचिन्त्य-चरित्र विदर्प विमोह,
प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।

हे जरा और मरण से रहित, विहारवर्जित, चिन्ता रहित, निर्मल, अहंकार रहित, अचिन्त्य चारित्र के धारी, दर्प रहित, और मोह रहित, विशुद्ध सिद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हो।

विवर्ण विगन्ध विमान विलोभ,
विमाय विकाय विशब्द विशोभ ।
अनाकुल केवल सर्व विमोह,
प्रसीद विशुद्ध सुसिद्ध-समूह ।।

हे वर्ण रहित, गन्ध रहित, मान रहित, लोभ रहित माया रहित, शरीर रहित, शब्द रहित, लौकिक शोभा से शून्य, आकुलता रहित असहाय, सबका हित करने वाले और मोह रहित विशुद्ध शुद्ध समूह ! आप हम पर प्रसन्न हो।

घत्ता

असम–समयसारं चारु-चैतन्य-चिह्नं
पर-परिणति-मुक्तं पद्मनन्दीन्द्र-वन्द्यम् ।
निखिल–गुण निकेतं सिद्ध चक्र विशुद्धं
स्मरति नमति यो वा स्तौति सोऽभ्येति मुक्तिं

इस प्रकार जो मनुष्य असम या अनुपम अर्थात् संसारी आत्माओं से भिन्न समयसार स्वरूप, सुन्दर चैतन्य चिह्न वाले, पर परिणति से रहित, पद्मनन्दि आचार्य द्वारा वन्दनीय सम्पूर्ण गुणों के मन्दिर और विशुद्ध सिद्ध समूह का स्मरण करता है, नमस्कार करता है और स्तुति करता है वह मुक्ति का अधिकारी होता है।

[ॐ ह्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

शान्तिपाठः

शान्तिजिनं शशि-निर्मल-वक्त्रं
शील-गुण-व्रत-संयम-पात्रम् ।
अष्टशतार्चित-लक्षण-गात्रं
नौमि जिनोत्तममम्बुज-नेत्रम् ॥१॥

जिनका मुख चन्द्रमा के समान निर्मल है, जो शील, गुण, व्रत और संयम के पात्र है, जिनका शरीर १००८ लक्षणों से युक्त है और जिनके नेत्र कमल के समान हैं उन शान्तिनाथ भगवान को मै नमस्कार करता हूं ।

पञ्चममीप्सित-चक्रधराणां
पूजितमिन्द्र-नरेन्द्र-गणैश्च ।
शान्तिकरं गण-शान्तिमभीप्सुः
षोडश-तीर्थकरं प्रणमामि ॥२॥

जो चक्रवर्तियो मे पॉचवे चक्रवर्ती हैं, इन्द्र और नरेन्द्रों के समूह से पूज्यनीय है, संघ की शान्ति की इच्छा से मै उन शाति के करने वाले सोलहवे तीर्थंकर को नमस्कार करता हूं ।

दिव्य-तरुः सुर-पुष्प-
सुवृष्टिर्दुन्दुभिरासन-योजन-घोषौ ।
आतपवारण-चामर-युग्मे
यस्य विभाति च मण्डलतेजः ॥३॥

तं जगदर्चित-शान्ति-जिनेन्द्रं

शान्तिकरं शिरसा प्रणमामि ।

सर्वगणाय तु यच्छतु शान्ति

मह्यमरं पठते परमां च ॥४॥

जिनके देवमयी अशोकवृक्ष देवो के द्वारा की गयी पुष्प-वर्षा, दुन्दुभि बाजा, सिंहासन, एक योजन तक दिव्य ध्वनि का घोष, तीन छत्र, चामर युगल और भामण्डल शोभा देते हैं उन जगत्पूज्य और शान्ति के करने वाले शान्तिनाथ भगवान को सिर नवाकर नमस्कार करता हू। वे शातिनाथ जिन समस्त संघ को और मुझे शान्तिपाठ पढ़ने से अति शीघ्र परम शान्ति दे।

येऽभ्यर्चिता मुकुट-कुण्डल-हार-रत्नैः

शक्रादिभिः सुरगणैः स्तुत-पाद-पद्माः ।

ते मे जिनाः प्रवर-वंश-जगत्प्रदीपा-

स्तीर्थङ्कराः सतत-शान्तिकरा भवन्तु ॥५॥

जो तीर्थङ्कर जन्मोत्सव के समय इन्द्रादि के द्वारा मुकुट, कुण्डल, और रत्नो के हार से पूजित हुए तथा जिनके चरण-कमलो की स्तुति देवगणो ने की वे श्रेष्ठवंशी तथा जगत के दीपक २४ तीर्थंकर मुझे सदा शान्ति देवे।

संपूजकानां प्रतिपालकानां

यतीन्द्र-सामान्य-तपोधनानाम् ।

देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः

करोतु शान्तिं भगवाञ्जिनेन्द्रः ॥६॥

पूजा करने वालों को, प्रजा के रक्षकों को, मुनीन्द्रों को और सामान्य तपस्वियो को तथा देश, राष्ट्र, नगर और राजा को भगवान् जिनेन्द्र शान्ति प्रदान करे।

क्षेमं सर्वप्रजानां प्रभवतु

बलवान्धार्मिको भूमिपालः

काले काले च सम्यग्विकिरतु

मघवा व्याधयो यान्तु नाशम्।

दुर्भिक्षं चौर–मारी क्षणमपि

जगतां मा स्म भूज्जीवलोके

जैनेन्द्रं धर्मचक्रं प्रभवतु सततं

सर्वं सौख्य-प्रदायि ॥७॥

सब प्रजा का कल्याण हो। राजा बलवान् और धार्मिक हो। मेघ समय-समय पर अच्छी वृष्टि करें। सब रोगो का नाश हो। जगत् मे प्राणियो को दुर्भिक्ष, चोरों का उपद्रव तथा मारी (प्लेग) क्षण भर के लिए भी न हो और सब सुखो का देने वाला जैन धर्म सदा फैला रहे।

प्रध्वस्त-घाति-कर्माणः केवलज्ञान-भास्कराः।

कुर्वन्तु जगतां शान्तिं वृषभाद्या जिनेश्वराः ॥८॥

घातिया कर्मों का नाश करने वाले और केवल ज्ञान रूपी सूर्य ऋषभदेव आदि तीर्थङ्कर जगत में शांति करे।

इष्ट-प्रार्थना

प्रथम करण चरणं द्रव्यं नमः

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग और द्रव्यानु-योग को नमस्कार हो।

शास्त्राभ्यासो जिनपति-नुतिः संगतिः सर्वदार्यैः
सद्वृत्ताना गुण-गण-कथा दोष-वादे च मौनम् ।
सर्वस्यापि प्रिय-हित-वचो भावना चात्मतत्त्वे ।
संपद्यन्तां मम भव-भवे यावदेतेऽपवर्गः ॥६॥

शास्त्र का अभ्यास, जिनेन्द्र देव का दर्शन, निरन्तर श्रेष्ठ पुरुषो की सगति, श्रेष्ठ चरित्रवान् पुरुषो के गुण समूह की कथा, परदोष के कहने मे मौन, सबसे मिष्ट और हित-कारी बोलना तथा आत्मतत्त्व की भावना ये बातें मुझे भव भव मे तब तक मिले जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो।

तव पादौ मम हृदये मम हृदयं तव पद-द्वये लीनम्
तिष्ठतु जिनेन्द्र तावद्यावन्निर्वाण-संप्राप्तिः ॥१०॥

हे जिनेन्द्र! आपके चरण मेरे हृदय मे और मेरा हृदय आपके चरणो मे तब तक लीन रहे जब तक मुझे मोक्ष की प्राप्ति न हो।

अक्खर-पयत्थ-हीणं मत्ता-हीणं च जं मए भणियं।
तं खमउ णाणदेव य मज्झ वि दुक्ख-क्खयं दितु ।११।

हे ज्ञानदेव ! जो मैंने अक्षर हीन, पदहीन, अर्थ हीन, तथा मात्रा हीन पढ़ा हो उसे क्षमा करो और मेरे दु:ख का नाश करो ।

दुक्ख-खओ कम्म-खओ समाहिमरणं च बोहि-लाहो य
मम होउ जगद-बधव तव जिणवर चरण-सरणेण।१२।

हे तीनो लोकों के बन्धु जिनवर ! आपके चरणो की शरण मे मेरा दु:ख क्षय हो, मेरे कर्मों का क्षय हो, मुझे समाधि मरण और बोधि का लाभ हो।

स्तुतिः

त्रिभुवन-गुरो, जिनेश्वर परमानन्दैक-कारण कुरुष्व ।
मयि किङ्करेऽत्र करुणां यथा तथा जायते मुक्तिः।१३।

हे परम आनन्द के कारण, त्रिभुवन के गुरु जिनवर ! मुझ किङ्कर पर ऐसी करुणा करो जिससे मुक्ति की प्राप्ति होवे।

निर्विण्णोऽह नितरामर्हन्बहु-दुःखया भवस्थित्या ।
अपुनर्भवाय भवहर, कुरु करुणामत्र मयि दीने ।।१४।।

हे अर्हन, दु:ख बहुल भव स्थिति से मै अत्यन्त विरक्त हू। हे भवहर ! मुझ दीन पर ऐसी करुणा करो जिससे पुन भव की प्राप्ति न होवे।

उद्धर मा पतितमतो विषमाद्भवकूपतः कृपां कृत्वा ।
अर्हन्नलमुद्धरणे त्वमसीति पुनः पुनर्वच्मि ।।१५।।

मै विषय-भव कूप मे पड़ा हुआ हूं, कृपा करके उससे आप मेरा उद्धार करें। यह बात मैं बार-बार दुहराता हूँ कि

भव कूप से उद्धार करने में एक मात्र आप ही समर्थ हैं।

त्वं कारुणिकः स्वामी त्वमेव शरण जिनेश तेनाहम् ।
मोह-रिपु-दलित-मान फूत्करण तव पुरः कुर्वे ।।१६।।

हे जिनेश ! आप कारुणिक हैं, आप स्वामी हैं और आप ही समर्थ हैं, इसलिए मैं आपके समक्ष मोह रूपी शत्रु के मान का मर्दन करने वाली यह करुणा भरी पुकार कर रहा हूं ।

ग्रामपतेरपि करुणा परेण केनाप्युपद्रुते पुंसि ।
जगतां प्रभो न किं तव जिन मयि खलु कर्मभिः प्रहते

अन्य किसी के द्वारा किसी मनुष्य के प्रताड़ित होने पर ग्रामपति को भी करुणा उत्पन्न होती है। हे जगत के पति जिनदेव ! मैं तो कर्मों के द्वारा रगा गया हूं। मुझ पर आपकी करुणा कैसे नहीं होगी, अर्थात अवश्य होगी।

अपहर मम जन्म दयां कृत्वा चेत्येकवचसि वक्तव्यम्
तेनातिदग्ध इति मे देव बभूव प्रलापित्वम् ।।१८।।

मेरा एक मात्र यही निवेदन है कि दया करके मेरी इस जन्म सन्ततिका अन्त करे। मै उससे अत्यन्त दग्ध हो रहा हूँ, इसलिए हे देव ! मेरी यह करुणा भरी पुकार है।

तव जिन चरणाब्ज-युग करुणामृत-शीतलं यावत्
संसार-ताप-तप्तः करोमि हृदि तावदेव सुखी ।१६।

हे जिन ! ससार के ताप से तप्त हुआ मै जब तक आपके करुणामृत से शीतल चरण कमल-युगल को अपने हृदय में धारण करता हूं तभी तक मैं सुखी रहता हूं।

जगदेक-शरण भगवन् नौमि श्रीपद्मनन्दित-गुणौघ
किं बहुना कुरु करुणामत्र जने शरणमापन्ने ॥२०॥

हे पद्मनन्दि आचार्य के द्वारा प्रशंसित गुण समूह वाले, जगत् के एक मात्र शरण रूपी भगवन् ! मैं आपको प्रणाम करता हूं। बहुत कहने से क्या ? शरण को प्राप्त हुए इस जन पर आप करुणा करे।

[परिपुष्पाजलि क्षिपामि]

विसर्जनम्

ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि शास्त्रोक्तं न कृतं मया ।
तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादाज्जिनेश्वर ॥१॥

ज्ञान से या अज्ञान से जो शास्त्रोक्त विधि मैं न कर सका हूँ, हे जिनवर ! आपके प्रसाद से वह सब पूर्ण हो।

आह्वानं नैव जानामि नैव जानामि पूजनम् ।
विसर्जनं न जानामि क्षमस्व परमेश्वर ॥२॥

मै न तो आवाहन जानता हू, न पूजन करना जानता हूँ, और न विसर्जन करना जानता हूँ। हे परमेश्वर क्षमा करो।

मन्त्र-हीनं क्रिया-हीनं द्रव्य-हीनं तथैव च ।
तत्सर्वं क्षम्यतां देव रक्ष रक्ष जिनेश्वर ॥३॥

जो कुछ मन्त्र में कमी रही हो, क्रिया मे कमी रही

हो, द्रव्य में कमी रही हो, हे देव! वह सब क्षमा करो। हे जिनवर! रक्षा करो, रक्षा करो।

आहूता ये पुरा देवा लब्धभागा यथाक्रमम्।
ते मयाऽभ्यर्चिता भक्त्या सर्वे यातु यथास्थितिम्॥४॥

[जिन देवों का पहले मैंने आह्वान किया तथा जिन्होंने क्रमश (अपने-अपने) भाग लिये उनका मैंने भक्ति से अर्चन किया वे सब अभी अपने-अपने स्थान पर जावें।

षोडशकारण-पूजा

ऐन्द्रं पदं प्राप्य परं प्रमोदं

धन्यात्मतामात्मनि मन्यमानः ।

दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-

लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि ।।

परम प्रमोद रूप इन्द्र के पद को धारण कर अपने अन्दर अपने आपको धन्य मानता हुआ तीर्थङ्कर लक्ष्मी की कारण भूत दर्शन-विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओ की मै पूजा करता हू ।

[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणानि अत्रावतरत अवतरत संवौषट् ।

ॐ ह्री दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणानि अत्र तिष्ठत तिष्ठत ठः ठ ।

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणानि अत्र मम संनिहितानि भवत भवत वषट् ।

सुवर्ण-भृङ्गार-विनिर्गताभिः

पानीय-धाराभिरिमाभिरुच्चैः ।

दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-

लक्ष्म्या महाम्यहं षोडशकारणानि ।।

सोने की झारी से निकली हुई जल की इन उन्नत धाराओ से तीर्थङ्कर लक्ष्मी की कारण भूत दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओं की मै पूजा करता हूं ।

[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धि-विनयसम्पन्नता-शीलव्रतेष्वनतिचारा-

भीक्ष्ण ज्ञानोपयोग संवेग-शक्तिनस्त्याग-तप. साधुसमाधि-वैया-
वृत्त्यकरणार्हद्भभि-आचार्यभक्ति-बहुश्रुतभक्ति-प्रवचनभक्ति-
आवश्यकापरिहाणिमार्गप्रभावना-प्रवचनवात्सल्येति तीर्थकर-
त्वकारणेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति
स्वाहा]

श्रीखण्ड-पिण्डोद्भव-चन्दनेन
कर्पूर-पूरैः सुरभीकृतेन ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-
लक्ष्म्या-महाम्यहं षोडश-कारणानि ।।

कपूर के पूर से सुवासित श्रीखण्ड के चन्दन से तीर्थंकर लक्ष्मी की कारणभूत दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओ की मै पूजा करता हूं ।

[ॐ ह्रीं षोडशकारणेभ्यः संसारतापविनाशनाय चन्दन निर्वपामीति स्वाहा ।]

स्थूलैरखण्डैरमलैः सुगन्धैः
शाल्यक्षतैः सर्व-जगन्नमस्यैः ।
दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-
लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि ।।

समस्त जगत को रुचिकर, दीर्घ, अखण्ड, स्वच्छ और सुगन्धित अक्षतो से तीर्थङ्कर लक्ष्मी की कारणभूत दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओ की मैं पूजा करता हूॅ ।

[ॐ ह्रीं षोडशकारणेभ्योऽक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।]

गुञ्जद्द्विरेफैः शतपत्र-जाती-

सत्केतकी–चम्पक–मुख्य–पुष्पैः ।

दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-

लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि ॥

जिन पर भौरे गुंजार कर रहे हैं ऐसे कमल, जाती, केतकी और चम्पा आदि प्रमुख फूलो से तीर्थंकर लक्ष्मी की कारणभूत दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओ की मैं पूजा करता हूँ।

[ॐ ह्रीं षोडशकारणेभ्यः कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।]

नवीन-पक्वान्न-विशेषसारैर्नाना-

प्रकारैश्चरुभिर्वरिष्ठैः ।

दृक्शुद्धि–मुख्यानि जिनेन्द्र-

लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश कारणानि ॥

सारभूत और ताजे पक्वान्न रूप नाना प्रकार के सुन्दर नैवेद्यो से तीर्थङ्कर लक्ष्मी की कारणभूत दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओ की मैं पूजा करता हूँ।

[ॐ ह्रीं षोडशकारणेभ्यः क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

तेजोमयोल्लास-शिखैः

प्रदीपैर्दीप-प्रभैर्ध्वस्त-तमो-वितानैः ।

दृक्शुद्धि–मुख्यानि जिनेन्द्र-
लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश कारणानि ॥

जिनके प्रकाश से अन्धकार का समूह नष्ट हो गया है ऐसे तेज और उल्लासमय शिखारूप प्रभा युक्त प्रदीपों से तीर्थङ्कर लक्ष्मी की कारण भूत सोलह कारण भावनाओं की मैं पूजा करता हू ।

[ॐ ह्रीं षोडशकारणेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा ।]

कर्पूर–कृष्णागुरु-चूर्णरूपैः-
धूपैर्हुताशाहुत-दिव्य-गन्धैः ।

दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-
लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि ॥

अग्नि मे आहुति देने से जिसकी दिव्य गन्ध निकल रही है ऐसी कपूर और कालागुरु के चूर्ण की धूप से तीर्थङ्कर लक्ष्मी की कारण भूत सोलह कारण भावनाओं की मै पूजा करता हूँ ।

[ॐ ह्रीं षोडशकारणेभ्यो दुष्टाष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।]

सन्नालिकेराक्रमुकाम्र-बीजपूरादिभिः
सारफलै रसालैः ।

दृक्शुद्धि-मुख्यानि जिनेन्द्र-
लक्ष्म्या महाम्यहं षोडश-कारणानि ॥

नारियल, सुपारी, आम और बिजौरा आदि रसीले उत्तम फलो से तीर्थंकर लक्ष्मी की कारण भूत दर्शन विशुद्धि आदि सोलह कारण भावनाओ की मैं पूजा करता हूँ ।

[ॐ ह्रीं षोडशकारणेभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ।]

पानीय-चन्दनरसाक्षत-पुष्प-भोज्य
सद्दीप-धूप-फल-कल्पितमर्घ्यपात्रम् ।
आर्हन्त्य-हेत्वमल-षोडश-कारणानां
पूजा विधौ विमल-मङ्गलमातनोतु ॥

अर्हन्त पद की कारग सोलह कारण भावनाओ की पूजा विधि मे जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल से निर्मित अर्घ पात्र मेरे लिए प्रशस्त मङ्गल का विस्तार करें ।

[ॐ ह्रीं षोडशकारणेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

प्रत्येकार्घ्यम्

यदा यदोपवासाः स्युराकर्ण्यन्ते तदा तदा ।
मोक्ष-सौख्यस्य कर्तृणि कारणान्यपि षोडश ॥

जब जब उपवास करे तब-तब मोक्ष-सुख की देने वाली इन सोलह कारण भावनाओं को भी सुनना चाहिए ।

(यन्त्रोपरि पुष्पाञ्जलि क्षिपामि)

असत्य–सहिता हिंसा मिथ्यात्वं च न दृश्यते ।
अष्टाङ्गं यत्र संयुक्तं दर्शनं तद्विशुद्धये ॥१॥

हिंसा, असत्य और मिथ्यात्व से रहित तथा आठ अङ्ग सहित सम्यग्दर्शन दर्शन की विशुद्धि का कारण है।
(ॐ ह्री दर्शनविशुद्धयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

दर्शन–ज्ञान–चारित्र–तपसां यत्र गौरवम् ।
मनो-वाक्-काय-संशुद्धया सा ख्याता विनय-स्थितिः

मन, वचन और काय की शुद्धि पूर्वक दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप का जहाँ आदर किया जाता है वह विनय सम्पन्नता है।
(ॐ ह्री विनयसंपन्नतायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

अनेक–शील–संपूर्णं व्रत–पञ्चक–संयुतम् ।
पञ्चविंशति-क्रिया यत्र तच्छीलव्रतमुच्यते ॥३॥

जहाँ पाँच व्रत सहित अनेक शीलों से परिपूर्णता को प्राप्त हुई पच्चीस क्रियाये होती है उसे शीलव्रत कहते हैं।
(ॐ ह्री निरतिचारशीलव्रतायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

काले पाठः स्तवो ध्यानं शास्त्रे चिन्ता गुरौ नतिः ।
यत्रोपदेशना लोके शास्त्र-ज्ञानोपयोगता ॥४॥

योग्य काल मे पाठ, स्तवन और ध्यान करना, शास्त्र का मनन करना, गुरु को नमन करना और उपदेश देना इन्हे लोक मे अभीक्ष्ण ज्ञानोपयोगता कहते है।
(ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

पुत्र-मित्र-कलत्रेभ्यः संसार–विषयार्थतः ।
विरक्तिर्जायते यत्र स संवेगो बुधैः स्मृतः ॥५॥

जहाँ पुत्र, मित्र, स्त्री और सासारिक विषयो से विरक्ति होती है उसे पण्डित जन सवेग कहते है ।

(ॐ ह्रीं संवेगायाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

जघन्य-मध्यमोत्कृष्ट-पात्रेभ्यो दीयते भृशम् ।
शक्त्या चतुर्विधं दानं सा ख्याता दान-सस्थितिः।६।

जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट पात्रो को जहाँ शक्ति के अनुसार चार प्रकार का दान दिया जाता है वह दान संस्थिति कहलाती है ।

(ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागायाऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

तपो द्वादश-भेदं हि क्रियते मोक्ष–लिप्सया ।
शक्तितो भक्तितो यत्र भवेत्सा तपसः स्थितिः ।७।

जहाँ मोक्ष की इच्छा से शक्ति और भक्ति के अनुसार बारह प्रकार का तपश्चरण किया जाता है वह तप सस्थिति कहलाती है ।

(ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

आर्या

मरणोपसर्ग-रोगादिष्टवियोगादनिष्टसंयोगात् ।
न भयं यत्र प्रविशति माधु-समाधिः स विज्ञेयः ।८।

मरण, उपसर्ग, रोग, इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग से जहाँ किसी प्रकार का भय नहीं होता है उसे साधु समाधि जानना चाहिए ।

(ॐ ह्रीं साधुसमाधयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

कुष्ठोदर-व्यथा-शूलैर्वात-पित्त शिरोर्तिभिः ।
कास-श्वास-जरा-रोगैः पीडिता ये मुनीश्वराः ।९।
तेषां भैषज्यमाहारं शुश्रूषा पथ्यमादरात् ।
यत्रैतानि प्रवर्तन्ते वैयावृत्यं तदुच्यते ।।१०।।

जो मुनीश्वर कोढ़, उदर की पीड़ा, शूल बात, पित्त, सिर की पीड़ा, खाँसी, श्वास, बुढ़ापा आदि रोगों से पीड़ित हैं उन्हें भक्ति पूर्वक दवा देना, आहार देना, शुश्रूषा करना और पथ्य देना ये कार्य जहाँ किये जाते है उसे वैयावृत्त्य कहते हैं।

[ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

मनसा कर्मणा वाचा जिन-नामाक्षरद्वयम् ।
सदैव स्मर्यते यत्र सार्हद्भक्तिः प्रकीर्तिता ।।११।।

जहाँ मन, वचन और काय से जिन-नामके दो अक्षरों (अर्ह या जिन) का स्मरण किया जाता है उसे अर्हद् भक्ति कहते हैं।

[ॐ ह्रीं अर्हद्भक्तये‍ऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

निर्ग्रन्थ-भुक्तितो भुक्तिस्तस्य द्वारावलोकनम् ।
तद्भोज्यालाभतो वस्तु रसत्यागोपवासता ।।१२।।
तत्पाद-वन्दना पूजा प्रणामो विनयो नतिः ।
एतानि यत्र जायन्ते सूरि-भक्तिर्मता च सा ।।१३।।

मुनियों के आहार कर जाने पर आहार करना, आहार के लिए द्वारापेक्षण करना, मुनियों का आहार न होने पर

रस आदि छोड़ देना या उपवास करना, उनके चरणो की वन्दना, पूजा प्रणाम, विनय और नमस्कार ये क्रियायें जहाँ की जाती हैं वह गुरु-भक्ति मानी गयी है।

[ॐ ह्रीं आचार्यभक्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

भव-स्मृतिरनेकान्त-लोकालोक-प्रकाशिका ।
प्रोक्ता यत्राऽर्हता वाणी वर्ण्यते सा बहुश्रुतिः ।।१४।।

जिसमें जीवो की जन्म-जन्मान्तर की कथाओ का वर्णन है जो अनेकान्त तत्त्व और लोकालोक को बतलाने वाली है ऐसी जिनवाणी का जहां व्याख्यान किया जाता उसे बहुश्रुत भक्ति कहते हैं।

[ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

षड्-द्रव्य-पञ्च-कायत्वं सप्त-तत्त्वं नवार्थता ।
कर्म-प्रकृति-विच्छेदो यत्र प्रोक्तः स आगमः ।।१५।।

छह द्रव्य, पाँच अस्तिकाय, सात तत्त्व, नौ पदार्थ और कर्म प्रकृतियो के विच्छेद आदि का जिसमें वर्णन है उस आगम का पढ़ना प्रवचन भक्ति है।

[ॐ ह्रीं प्रवचनभक्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

प्रतिक्रमस्तनूत्सर्गः समता वन्दना स्तुतिः ।
स्वाध्यायः पठयते यत्र तदावश्यकमुच्यते ।।१६।।

प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग, समता, वन्दना, स्तुति और स्वाध्याय ये छह आवश्यक जहाँ किये जाते हैं उसे आवश्यक भावना कहते हैं।

[ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाणयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।]

जिन–स्नानं श्रुताख्यानं गीत-वाद्यं च नर्तनम् ।
यत्र प्रवर्तते पूजा सा सन्मार्गप्रभावना ।।१७।।

जिनदेव का अभिषेक, श्रुत का व्याख्यान, गीत, वाद्य तथा नृत्य आदि पूजा जहाँ की जाती है वह सन्मार्ग प्रभावना है।

[ॐ ह्रीं सन्मार्गप्रभावनायै अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

चारित्र-गुण-युक्तानां मुनीनां शील-धारिणाम् ।
गौरवं क्रियते यत्र तद्वात्सल्यं च कथ्यते ।।१७।।

चारित्र गुण के धारी शीलवान् मुनियो का जहाँ आदर किया जाता है उसे वात्सल्य कहते है।

[ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

जयमाला

भव भवहिं निवारण सोलह कारण
पयडमि गुण–गण–सायरहं ।
पणविवि तित्थंकर असुह-खयंकर
केवलणाण–दिवायरहं ।।१।।

अनेक गुणो के समुद्र, अशुभ का क्षय करने वाले और केवल ज्ञानरूपी सूर्य तीर्थङ्करो को प्रणाम करके मैं ससार भ्रमण को मिटाने वाली सोलह कारण भावनाओ का कथन करता हू।

पद्धरि-छंद

दिढ धरहु परम दंसण-विसुद्धि

मण-वयण-काय-विरइय-तिसुद्धि ।

मा छंडहु विणऊ-चउ-पयार

जो मुत्ति वरांगण-हियहिं हार ।।२।।

मन, वचन और काय से त्रिकरण शुद्धि करके दृढ़ता से परम दर्शन विशुद्धि को धारण करो तथा मुक्ति रूपी स्त्री के हृदय के सुन्दर हार स्वरूप चारों प्रकार की विनय को मत छोडो ।

अणुदिणु परिपालउ सील-भेउ

जो हत्ति हरइ संसार-हेउ ।

णाणोपजोग जो काल गमइ,

तसु तणिक कित्ति भुवणयहिं भमइ ।।३।।

जिनकी भक्ति संसार के कारणों का हरण करती है उन शील के भेदों का निरन्तर पालन करो तथा जो ज्ञानोप-योग में समय बिताता है उसकी कीर्ति समस्त संसार में फैल जाती है ।

संवेउ चाउ जे अणुसरंति,

वेएण भवण्णउ ते तरंति ।

जे चउविह-दाण सुपत्त देय,

ते भोमभूमि-सुह सत्थ लेय ।।

जो संवेग और त्याग का अनुसरण करते हैं वे शीघ्र

ही संसार समुद्र से पार होते हैं। जो सत्पात्र को चारो प्रकार का दान देते है वे भोग भूमि के प्रशस्त सुख प्राप्त करते हैं।

जे तव तवंति बारह-पयार,
ते सग्ग-सुरहँ दह-विहव-सार ।
जे साहु—समाधि धरंति थक्कु,
सो हवइ ण कालमुहं धुवक्कु ।।

जो बारह प्रकार का तपश्चरण करते हैं वे स्वर्ग मे देवो की दश प्रकार की सम्पदा प्राप्त करते हैं। जो साधु समाधि को धारण करते हैं वे नियम से काल के वश नहीं होते।

जो जाणइ वेयावच्चकरण,
सो होइ सव्व—दोसाण हरण ।
जो चिंतइ मणि अरिहंत देव,
तसु विसय हणंतइ कवण खेव ।।

जो वैयावृत्त्य करना जानता है वह सब दोषो को हरण करने वाला होता है। जो मन मे अरहंत देव का का स्मरण करता है उसे विषय भोग नष्ट करने में कोई विलम्ब नहीं लगता।

पव्वयण-सरिस जे गुरु णमंति,
चउगइ-संसार ण ते भमंति ।
बहु—सुयहँ भत्ति जे धर करंति,
अप्पउ रयण—त्तय ते धरंति ।।

जो प्रवचन के समान गुरुओं को नमस्कार करते हैं वे चतुर्गति रूप संसार मे परिभ्रमण नहीं करते। जो मनुष्य उपाध्यायों की भक्ति करते है वे अपने रत्नत्रय के धारी होते हैं।

जे छह आवासइ चित्त देइ,
सो सिद्ध पंच सहरत्थ लेइ।
जे मग्ग-पहावण आयरंति,
ते अहमिदत्तणु संभवंति॥

जो छह आवश्यको का चित्त से पालन करते हैं वे लोकाग्र मे स्थित पञ्चम सिद्ध गति को प्राप्त होते है। जो मार्ग प्रभावना करते हैं वे मरकर अहमिन्द्र होते हैं।

जे पवयण-कज्ज-समत्थ हुंति,
तहँ कम्म जिणिदह खवण भंति
जे वच्छलचछ-कारण वहंति,
ते तित्थयरत्तउ पुह लहंति॥

जो प्रवचन कार्य में समर्थ होते हैं जिनेन्द्र के समान उनके कर्मों का क्षय होता है। जो वात्सल्य पैदा होने के कारण जुटाते है वे तीर्थङ्कर पद प्राप्त करते हैं।

घत्ता

जे सोलह-कारण कम्म वियारण
जे धरंति वय-सील-धरा।

ते दिवि अमरेसुर पहुमि णरेसुर
सिद्धवरंगण—हियहि हरा ॥

व्रत और शील के धारी जो प्राणी कर्मों का नाश करने वाले इन सोलह कारणों का पालन करते है वे स्वर्ग मे इन्द्र और पृथ्वी पर नरेन्द्र का पद पाकर अन्त मे मुक्ति रूपी स्त्री के हृदय को हरने वाले होते है, अर्थात् मुक्ति पद प्राप्त करते है।

[ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्धयादिषोडशकारणेभ्योऽनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।]

एताः षोडश-भावना यतिवराः कुर्वन्ति ये निर्मला-
स्ते वै तीर्थंकरस्य नाम पदवीमायुर्लभन्ते कुलम् ।
वित्तं काञ्चन-पर्वतेषु विधिना स्नानार्चनं देवतां
राज्यं सौख्यमनेकधा वर तपो मोक्षं च सौख्यास्पदम् ।

जो पवित्र यतिवर इन सोलह कारण भावनाओ की भावना करते हैं वे निश्चय से तीर्थङ्कर पद, परिपूर्ण आयु उत्तम कुल, सम्पत्ति, मेरु पर विधि पूर्वक अभिषेक, देवता पद, राज्य सुख, अनेक प्रकार के तप और अन्त मे सुख का स्थान मोक्ष को प्राप्त करते है। [इत्याशीर्वाद]

पञ्च-मेरु-पूजा (पुष्पाञ्जलि पूजा)

[यति रत्नचन्द्र कृत]

सुदर्शनमेरु

जिनान्संस्थापयाम्यत्राह्वाननादि विधानतः ।
सुदर्शन-भवान् पुष्पाञ्जलि—व्रत-विशुद्धये ॥१॥

पुष्पांजलि व्रत की शुद्धि के लिए आह्वानन आदि विधि के साथ सुदर्शन मेरु पर स्थित जिन प्रतिमाओं की स्थापना करता हूं।

(ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमा-समूह अत्र अवतर अवतर संवौषट्।

ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि जिनचैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमासमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठः।

ॐ ह्री सुदर्शनमेरुसम्बन्धिचैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।)

स्वर्धुनी-जल-निर्मल-धारया
विशन-कान्ति-निशाकर भारया।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थितान्
यजत षोडश-नित्य-जिनालयान् ॥२॥

चन्द्रमा की स्वच्छ किरणो के समान गगाजल की निर्मल धारा से प्रथम सुदर्शनमेरुसम्बन्धि चारो दिशाओ के सोलह जिनालयो की नित्य पूजा करो।

(ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धिभद्रशाल-नन्दन-सौमनस पाण्डुक-वनसम्बन्धिपूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।)

मलय-चन्दन-मर्दित-सद्द्रवैः
सुरभि-कुङ्कुम-सौरभ-मिश्रितैः।
प्रथम मेरु सुदर्शन-दिक्स्थितान्···· ॥३॥

सुगन्धित कुङ्कुम के सौरभ से मिश्रित घिसे हुए मलयागिरि के चन्दन के जल से प्रथम सुदर्शन मेरु सम्बन्धी चारो दिशाओ के सोलह जिनालयो की प्रतिदिन पूजा करो ।
(ॐ ह्री सुदर्शनमेरुसम्बन्धि ' जिनबिम्बेभ्य. चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।)

अशकलैरमलैः शुभ–शालिजैर्वि-
धुकरोज्ज्वल-कान्तिभिरक्षतैः ।
प्रथम–मेरु-सुदर्शन–दिक्स्थितान्··· ॥४॥

अखंड, निर्मल और चन्द्रमा की किरणो के समान धवल शालि के अक्षतो से प्रथम सुदर्शन मेरु सम्बन्धी चारो दिशाओ के सोलह जिनालयो की पूजा करो ।
(ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धी जिनबिम्बेभ्य अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।)

अमरपुष्प-सुवारिज चम्पकैर्बकुल-
मालति-केतकि–सम्भवैः ।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थितान्··· ॥५॥

कल्पवृक्ष, कमल, चम्पा, वकुल, मालती और केतकी के सुन्दर पुष्पो से प्रथम सुदर्शन मेरु सम्बन्धी चारो दिशाओ के सोलह जिनालयो की नित्य पूजा करो ।
(ॐ ह्री सुदर्शनमेरुसम्बन्धी जिनबिम्बेभ्य पुष्प निर्वपामीति स्वाहा ।)

घृतवरादि-सुगन्ध-चरूत्करैः
कनक-पात्रचितैरंचनाप्रियैः ।

प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थतान्···· ॥६॥

सोने के बर्तन मे रखे हुए और उत्तम स्वाद वाले बढिया घी के सुगन्धित पकवानो से प्रथम मेरु सम्बन्धी चारो दिशाओ के सोलह जिनालयो की नित्य पूजा करो।

(ॐ ह्री सुदर्शनमेरुसम्बन्धी जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

मणि-घृतादि-नवैर्वरदीपकैस्तरल-
दीप्ति-विरोचित-दिग्गणैः।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थतान्···· ॥७॥

चारो ओर प्रकाश करने वाले तथा चञ्चल ज्योति वाले मणि और घी के नये दीपको से प्रथम मेरु सम्बन्धी चारो दिशाओ के सोलह जिनालयो की नित्य पूजा करो।

(ॐ ह्री सुदर्शनमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो दीप निर्वपामीति स्वाहा।)

अगुरु-देवतरूद्भव-धूपकैः
परिमलोद्गम-धूपित-विष्टपैः।
प्रथम-मेरु-सुदर्शन-दिक्स्थतान्···· ॥८॥

अपनी सुगन्ध से संसार को सुगन्धित करने वाली ऐसी अगुरु और हरि चन्दन की धूप से प्रथम मेरु सम्बन्धी चारो दिशाओ के सोलह चैत्यालयो की नित्य पूजा करो।

(ॐ ह्री सुदर्शनमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।)

क्रमुक—दाडिम—निम्बुक सत्फलैः
प्रमुख पक्व फलैः सरसोत्तमैः ।
प्रथम मेरु सुदर्शन दिक्स्थतान्····॥९॥

सुन्दर, सरस और पके हुए सुपारी, अनार और नीबू आदि फलो से प्रथम मेरु सम्बन्धी चार दिशाओं के सोलह चैत्यालयो की नित्य पूजा करो।

(ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्य' फलं निर्वपामीति स्वाहा ।)

विमल-सलिल-धारा-शुभ्र-गन्धाक्षतौघैः
कुसुम-निकर-चारु-स्वेष्ट-नैवेद्य-वर्गैः ।
प्रहत-तिमिर-दीपैर्धूप-धूम्रैः फलैश्च
रजत-रचितमर्घं रत्नचन्द्रो भजेऽहम् ॥१०॥

मै (रतनचन्द्र) निर्मल जल की धारा, शुभ्र चन्दन, स्वच्छ अक्षत, सुन्दर फूल, रुचिकर और अपने लिए इष्ट नैवेद्य, अन्धकार को नष्ट करने वाले दीपक, जलती हुई धूप तथा फलो से चाँदी के पात्र में अर्घ बनाकर मेरु सम्बन्धी जिनालयों की पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

जयमाला

जम्बूद्वीप धरा स्थितस्य सुमहामेरोश्च पूर्वादिषु
दिग्भागेषु चतुर्षु षोडश-महाचैत्यालये सद्वनैः ।

नाना-क्ष्माज-विभूषितैर्मणिमयैर्भद्रादिशालान्तकैः
संयुक्तस्य निवासिनो जिनवरान् भक्त्या स्तवीमि स्तवैः

जम्बूद्वीप मे स्थित जिस महान सुमेरु पर्वत की पूर्व आदि चारो दिशाओं में भद्रशाल आदि चार वन अनेक पृथ्वी से उत्पन्न हुए वृक्षो से सुशोभित हैं उस पर्वत सम्बन्धी सोलह महा जिनालयों मे स्थित जिन प्रतिमाओं की भक्ति पूर्वक अनेक स्तोत्रो से मै स्तुति करता हूँ।

जन्मदूरा नता देवकैर्निष्कलाः
स्वेदवीताः सदा क्षीर-देहाकुलाः ।
मेरु-संबन्धिनो वीतरागा जिनाः
सन्तु भव्योपकाराय संपूजिताः ।।

जन्म–मरण से रहित, देवताओ से नमस्कृत, निर्दोष, स्वेद रहित, दूध के समान देह वाले तथा सबके द्वारा पूजित प्रथम मेरु सम्बन्धी वीतराग जिनेन्द्र भव्यो के उपकार के लिए हों।

शुद्ध-वर्णाङ्किताः शुद्ध–भावोद्धरा
रत्न-वर्णोज्ज्वलाः सद्गुणैर्निर्भराः ।
मेरु-सबन्धिनो वीतारागा जिनाः
सन्तु भव्योपकाराय संपूजिता ।।

शुद्ध वर्ण से अङ्कित शुद्ध भाव को धारण करने वाले, रत्नो के वर्णों के समान उज्जवल, समीचीन गुणो से परिपूर्ण तथा सबके द्वारा पूजित प्रथम मेरु सम्बंधी वीतराग जिनेन्द्र भव्यो के उपकार के लिए हों।

मान—मायातिगामुक्ति-भावोद्धराः
शुद्धि-सद्बोध—शङ्कादि-दोषाहराः ।
मेरु-संबन्धिनो वीतरागा जिनाः
सन्तु भव्योपकार संपूजिताः ।।

मान और माया से रहित, मुक्ति सम्बन्धी भावो से परिपूर्ण, विशुद्ध केवल ज्ञान से शंकादि दोषो को नष्ट करने वाले और भले प्रकार से पूजित प्रथम मेरु सम्बन्धी वीतराग जिनेन्द्र भव्यों के उपकार के लिए हो।

क्षुत्तृषामोहकक्षेषु दावानलाः
प्रोल्लसद्बोधदीपाः सुधांशूत्कराः ।
मेरु-संबन्धिनो वीतरागा जिनाः
सन्तु भव्योपकाराय संपूजिताः

क्षुधा, तृपा, और मोह रूपी अरण्य को दावानल के के समान है, जिनमे बोध दीप प्रज्वलित हुआ है और जो अमृत किरणो के समान हैं वे प्रथम मेरु सम्बन्धी वीतराग जिनेन्द्र भव्यो के उपकार के लिए हो।

पूर्ण—चन्द्राभ—तेजोभिर्निवेशकाः
चन्द्र-सूर्य-प्रतापाः करावेशकाः ।
मेरु-संबन्धिनो वीतरागा जिनाः
सन्तु भव्योपकाराय संपूजिताः ।।

पूर्ण चन्द्रमा के समान कान्ति को धारण करने वाले,

चन्द्र-सूर्य के समान प्रतापी, तेजस्वी तथा भले प्रकार पूजित प्रथम मेरु सम्बंधी वीतराग जिनेन्द्र भव्यों के उपकार के लिए हों।

इति-रचित-फलौघाः प्राप्त-सुज्ञान-पारा
हत-तम-घन-पापा नम्र-सर्वामरेन्द्राः ।
गत निखिल-विलापाः कान्ति-दीप्ता जिनेन्द्राः
अपगत-घन-मोहाः सन्तु सिद्धयै जिनेन्द्रा ॥

इस प्रकार स्वर्ग-मोक्षादि फलों को देने वाले, सर्वज्ञ, गहन पाप को नाश करने वाले, देव और इन्द्रों से पूज्य विलाप आदि समस्त दोषों से रहित और कान्तिमान वीत-राग जिनेन्द्र सबकी सिद्धि के कारण हों।

(ॐ ह्रीं सुदर्शनमेरु संबंधि-भद्रशाल-नन्दन-सौमनस पाण्डुक-वनसंबन्धिपूर्व-दक्षिण पश्चिमोत्तरस्थ-जिनचैत्यालयस्थ-जिन-बिम्बेभ्य. पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

सर्व-व्रताधिपं सारंसर्व-सौख्यकरं सताम्।
पुष्पाजलिव्रतं पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियम् ॥

सभी व्रतों में मुख्य सारभूत और सज्जन पुरुषों को सब प्रकार का सुख देने वाला यह पुष्पाञ्जलिव्रत तुम लोगों की अविनश्वर लक्ष्मी को पुष्ट करे।

(इत्याशीर्वादः)

विजयमेरु

जिनान्संस्थापयाम्यत्राह्वाननादि–विधानतः ।
धातकीखण्ड–पूर्वाशा–मेरोर्विजय-वर्तिनः ।।१।।

धातकी खण्ड की पूर्व दिशा में स्थित विजयमेरु सम्बंधी जिनेन्द्रो की आव्हानन आदि विधान से मैं स्थापना करता हूँ।

(ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

सुतोयैः सुतीर्थोद्भवैर्वीतदोषः
सुगाङ्गेय-भृङ्गारनालास्यसङ्गैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं
यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ।।

श्रेष्ठ तीर्थ के दोषरहित सुन्दर जल से तथा गङ्गा के जल से भरी हुई निर्मल झारी से धातकी खण्ड मे स्थित द्वितीय मेरु सम्बन्धी रत्नमयी सुन्दर बिम्बो की मै (रत्नचन्द्र) पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्री विजयमेरुसम्बन्धीभद्रशाल–नन्दन-सौमनस-पाण्डुक-वनसम्बधि पूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिनबिम्बेभ्योजन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।)

सुगन्धागतालि-व्रजैः कुङ्कुमादि-
द्रवैश्चन्दनैश्चन्द्रपूर्णाभिरामैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं
यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

सुगन्ध से आकर मँडराते हुए भ्रमरो से युक्त तथा पूर्ण चन्द्रमा के समान अभिराम ऐसे केशर और चन्दन के द्रव से धातकी खण्डस्थ द्वितीय मेरु सम्बन्धी रत्नमयी उज्ज्वल जिन–प्रतिमाओ की मै पूजा करता हू।

(ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।)

सुशाल्यक्षतैरक्षतैर्दिव्य–देहैः
सुगन्धाक्षतारब्ध–भृङ्गार-गानैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं
यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

सुगन्ध से आकर गुञ्जार करते हुए भ्रमरो से युक्त अखण्ड शालि धान्य के सुन्दर अक्षतो से धातकी खण्डस्थ द्वितीय मेरु सम्बन्धी रत्नमयी जिन–प्रतिमाओ की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि 'जिनबिम्बेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।)

लवङ्गैः प्रसूनैस्ततामोदवद्भिः
सुमन्दार–माला-पयोजादि-जातैः ।

द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं

यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

खूब महकने वाले लौंग, मन्दार माला और कमल आदि फूलो से धातकी खण्डस्थ द्वितीय मेरु सम्बन्धी रत्न-मयी जिन प्रतिमाओ की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि ...जिनबिम्बेभ्य. पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।)

मनोज्ञैः सुखाद्यैर्गवीनाज्यतप्तै.

सुशाल्योदनैर्मोदकैर्मण्डकाद्यैः ।

द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं

यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

गाय के घी मे उत्तम शाली के चावलो से बनाये गये लड्डू और मॉड आदि स्वादिष्ट खाद्य पदार्थों से धातकी खण्डस्थ द्वितीय मेरु सम्बन्धी रत्नमयी जिन बिम्बो की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि...जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।)

प्रदीपैर्हते—ध्वान्त—रत्नादि-

भूतैर्ज्वलत्कीलजातैर्भृशं भासुरैश्च ।

द्वितीयं सुमेरुं शुभ धातकीस्थं

यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ॥

प्रज्वलित हुई लौ से अत्यन्त देदीप्यमान और अन्धकार को नष्ट करने वाले रत्नमयी दीपकों से धातकी खण्डस्थ

द्वितीय मेरु सम्बन्धी रत्नमयी जिनबिम्बो की मैं पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।)

सुधूपैः सुगन्धीकृताशा-
समूहैर्भ्रमद्भृङ्गयूथैः शुभैश्चन्दनाद्यैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभ धातकीस्थं
यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ।।

मँडराते हुए भौंरो से युक्त दसों दिशाओं को सुगन्धित करने वाली बढ़िया चन्दनादि की धूप से धातकी खण्डस्थ रत्नमयी जिनबिम्बो की मैं पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि···जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।)

शुभैर्मोचिचोचाम्र-जम्बीर-
काद्यैर्मनोऽभीष्ट-दानप्रदैः सत्फलाद्यैः ।
द्वितीयं सुमेरुं शुभं धातकीस्थं
यजे रत्न-बिम्बोज्ज्वलं रत्नचन्द्रः ।।

मन को अत्यन्त रुचिकर केला, नारियल, आम और नीबू आदि उत्तम फलो से धातकी खण्डस्थ द्वितीय मेरु सम्बंधी रत्नमयी जिनबिम्बो की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा ।

विशुद्धैरष्टसद्द्रव्यैरर्घ्यमुत्तारयाम्यहम् ।
हेम-पात्र-स्थितैर्भक्त्या जिनानां विजयौकसाम्।१०।

सोने के पात्र मे रखकर विशुद्ध आठ द्रव्यो से द्वितीय विजय मेरु सम्बन्धी जिन प्रतिमाओ का अर्घावतरण करता हूँ (ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

जयमाला

सकल-कलिल-मुक्ताः सर्व संपत्ति-युक्ता
गणधर-गण-सेव्याः कर्म-पङ्कःप्रणष्टाः ।
प्रहत-मदन-मानास्त्यक्त-मिथ्यात्व-पाशाः
कलित-निखिल-भावास्ते जिनेन्द्रा जयंतु ।।११।।

सब पापो से रहित, अन्तरङ्ग और बहिरङ्ग लक्ष्मी से से युक्त, गणधरो द्वारा सेवित, कर्म रूपी कीचड को धोने वाले, काम के मान को ध्वस्त करने वाले, मिथ्यात्व के बन्धन से रहित और सभी पदार्थों को साक्षात् करने वाले वे अर्थात् द्वितीय मेरु सम्बन्धी जिनेन्द्र जयवंत हो।

विमोह विमारित-काम-भुजङ्ग
अनेक-सदाविधि-भाषित-भङ्ग ।
कषाय-दवानल-तत्त्व-सुरङ्ग
प्रसीद जिनोत्तम मुक्ति-सुसंग ।।१२।।

हे मोह रहित, काम रूपी सर्प को नष्ट करने वाले, विवक्षावश सदा अनेक प्रकार का उपदेश करने वाले और कषाय रूपी दावानल के लिए जल के समान उत्तम वर्ण वाले मुक्ति मे स्थित जिनेन्द्र देव हम पर प्रसन्न हो।

निरीह निरामय निर्मल हंस

प्रकीर्णक-राजित शुद्ध सुवंश ।

अनिन्द्य-चरित्र विमानित-कंस

प्रसीद जिनोत्तम भव्य-निरंश ।।१३।।

हे निष्काम, नीरोग, निर्दोष, श्रेष्ठ, प्रकीणकों से शोभायमान, शुद्ध, कलङ्क रहित, श्रेष्ठ चारित्र के धारी और पापियों के मान को मर्दन करने वाले निरश भव्य जिनेन्द्र मुझ पर प्रसन्न हो ।

प्रबोध विबुद्ध जगत्त्रयसार,

अनन्त–चतुष्टय सागर पार ।

निवारित-सर्व-परिग्रह-भार

प्रसीद जिनोत्तम भव्य-सुतार ।।१४।।

हे अपने ज्ञान से तीनो लोकों को सजग करने वाले, अनन्त चतुष्टय से युक्त, संसार समुद्र से पारङ्गत, अन्तरङ्ग–बहिरङ्ग सब प्रकार के परिग्रह से रहित और भव्यो को तारने वाले जिनेन्द्र मुझ पर प्रसन्न हो ।

तपोभर-दारित-कर्म-कलङ्क

विरोग विभोग वियोग निशंक ।

अखण्डित चिन्मय–देह प्रकाश

प्रसीद जिनोत्तम मुक्ति-सुसंग ।।१५।।

हे तपश्चरण के भार से कर्म कलङ्क को नष्ट करने वाले नीरोग, भोग रहित, सबसे अलग, शङ्का रहित, अखण्ड और चैतन्य मय देह का प्रकाश करने वाले मुक्ति मे स्थित जिनेन्द्र मुझ पर प्रसन्न हो।

विवर्जित–दोष गुणौघ-करण्ड

प्रसारित-मान-तमो-मद--दण्ड ।

अपार—भवोदधि-तार-तरण्ड

प्रसीद जिनोत्तम मुक्ति-सुसंग ।।१६।।

हे अठारह दोषो से रहित, गुणों के पिटारे, मान रूपी अन्धकार को खण्डित करने वाले और अपार संसार, रूपी समुद्र से तारने के लिए नौका के समान मुक्ति मे स्थित जिनेन्द्र मुझ पर प्रसन्न हो।

दृगवगम—चरित्राप्राप्त–संसार-पारा

मकल-शशि-निभास्याः सर्व-सौख्यादि-वासाः ।

विदित-भव-विशिष्टाः प्रोल्लसज्ज्ञान-शिष्टा.

ददतु जिनवरास्ते मुक्ति-साम्राज्य-लक्ष्मीर् ।।१७।।

क्षायिक सम्यक्त्व, क्षायिक ज्ञान और क्षायिक चारित्र के धारी, संसार से पार होने वाले, पूर्ण चन्द्रमा के समान मुख वाले, अनत सुख से संयुक्त, अनेक भवो को जानने वाले और प्रकाशमान ज्ञान से सयुक्त वे जिनेन्द्र भगवान हमे मुक्ति रूपी साम्राज्य लक्ष्मी प्रदान करें।

(ॐ ह्रीं विजयमेरुसम्बंधिभद्रशाल–नंदन–सौमनस–पाण्डुक-वनसम्बंन्धिपूर्व–दक्षिण–पश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थजिन-बिम्बेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

सर्वं व्रताधिपं सारं सर्व-सौख्य-करं सताम् ।
पुष्पाञ्जलि-व्रतं पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियम्।१८।

सभी व्रतो में श्रेष्ठ सारभूत और धर्मात्माओं को सुखकारी पुष्पांजलि व्रत आपको शाश्वतिक लक्ष्मी प्रदान करें

(इत्याशीर्वादः)

अचलमेरु

जिनान् संस्थापयाम्यत्राह्वाननादि विधानतः ।
धातकी-पश्चिमाशास्थाचल-मेरु-प्रवर्तिनः ॥१॥

धातकी खण्ड के पश्चिम दिशा में स्थितअचल मेरु संबंधी जिनेन्द्रों की आह्वानन आदि विधि से मैं स्थापना करता हूं।

(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।)

ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।)

(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धिजिनप्रतिमासमूह अत्र मम सन्नि-हितो भव भव वषट् ।)

सौरभ्याहुत-सग्दन्ध—सारया जलधारया ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥२॥

सुगन्धित श्रेष्ठ जल की धारा से जरा और मरण का

नाश करने वाले अचल मेरु सम्बन्धी जिनेन्द्रों की मैं पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो जल निर्वपामीति स्वाहा।)

चारु-चन्दन-कर्पूर-काश्मीरादि-विलेपनैः ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥३॥

सुन्दर चंदन, कपूर और केशर आदि विलेपन से जरा और जन्म का नाश करने वाले अचल मेरु सम्बन्धी जिनेन्द्रों की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्य चन्दन निर्वपामीति स्वाहा।)

अक्षतैरक्षतानन्द-सुख-दान-विधानकैः ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥४॥

अविनाशी आनन्द और सुख देने वाले सुन्दर अक्षतों से जरा और जन्म का नाश करने वाले अचल मेरु सम्बंधी जिनेन्द्रों की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बंधि जिनबिम्बेभ्यो अक्षत निर्वपामीति स्वाहा।)

जाति-कुन्दादि-राजीव-चम्पकानेक पल्लवैः ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म—विनाशिने ॥५॥

चमेली, कुन्द, कमल और चम्पा आदि अनेक फूलों से जरा और जन्म का नाश करने वाले अचल मेरु सम्बन्धी जिनेन्द्रों की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्य: पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।)

खाद्य-स्वाद्यपदैर्द्रव्यैः सन्नाज्यैः सुकृतैरिव ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥६॥

मानो सुकृत ही हों ऐसे खाद्य और स्वाद्य आदि उत्तम पक्वान्नों से जरा और जन्म का नाश करने वाले अचल मेरु सम्बन्धि जिनेन्द्रों की मै पूजा करता हूं ।
(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

दशाग्रैः प्रस्फुरद्दीपैर्दीपैः पुण्य--जनैरिव ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥७॥

मानो पुण्यजन ही हो ऐसे प्रकाशमान दीपो से जरा और जन्म का विनाश करने वाले अचल मेरु सम्बंधी जिनेन्द्रो की मै पूजा करता हू ।
(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।)

धूपैः संधूपितानेक--कर्मभिर्धूपदायिने ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥८॥

अनेक कर्मों को जलाने में समर्थ धूप से सुगन्ध देने वाले तथा जरा और जन्म का नाश करने वाले अचल मेरु सम्बंधी जिनेन्द्रो की मै पूजा करता हूँ ।
(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बंधि'''जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।)

नारिकेलादिभिः पुङ्गैः फलैः पुण्यजनैरिव ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ॥९॥

मानो पुण्यजन ही हों ऐसे नारियल आदि बड़े-बड़े फलों से जरा और जन्म का नाश करने वाले अचल मेरु सम्बन्धी जिनेन्द्रो की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बंधि' जिनबिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।)

जलगन्धाक्षतानेक-पुष्प नैवेद्य दीपकैः ।
अचल-मेरु-जिनेन्द्राय जरा-जन्म-विनाशिने ।१०।

जल, गन्ध, अक्षत, अनेक प्रकार के पुष्प, नैवेद्य और दीपक से जरा और जन्म का नाश करने वाले अचल मेरु सम्बन्धी जिनेन्द्रों की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बंधि''' जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

जयमाला

श्रीधातकीखण्ड-विदेह-संस्थं
तृतीयमेरुं जिन—संप्रयुक्तम् ।
शुम्भत्प्रदीपोत्कर-रत्नचन्द्रं
संस्तौम्यहं सद्गुण-वर्द्धमानम् ॥१॥

श्री धातकी खण्ड के विदेह में स्थित जिन-प्रतिमाओ से युक्त, सुशोभित रत्न और चन्द्र रूपी प्रदीपों से युक्त और उत्तम पार्थिव गुणों से वर्द्धमान तृतीय मेरु की मैं स्तुति करता हूँ।

सुर-खेचर—किन्नर-देव-गमं ।
यात्रागत—चरण—मुनीन्द्र-रणं ।
नाना—रचना-रचित-प्रसरं ।
वन्दे गिरिराजमहं विभरं ॥२॥

जहाँ देव, विद्याधर और किन्नर देवों का आगमन होता रहता है, जहाँ यात्रा निमित्त आये हुए मुनिवरों के चरणों का शब्द होता है और जहाँ विविध प्रकार की रचना का प्रसार हो रहा है, वैभव-सम्पन्न उस गिरिराज की मैं वंदना करता हूँ।

मणि—भूषित-पार्श्व-युगं-सलयं ।
सुविराजित-प्रतिमा-जिन-निलयं ।
जिनवर—मंगल—गुण-गण-निचयं ।
वन्दे गिरिराजमहं विभरं ॥३॥

जिसके दोनों पार्श्व मणियों से विभूषित हो रहे हैं, जो पर्यायार्थिक दृष्टि से विनाशक हैं, जो जिन प्रतिमाओ के मंदिरो से सुशोभित हैं और जहाँ जिनवर के गुणो का मङ्गलगान हो रहा है, वैभव सम्पन्न उस गिरिराज की मैं वंदना करता हूं।

भविक—भाव—भावित—शोभगं ।
संश्रित—सुर—नर—कृत-घन-भोगं ।
सम्भव-भुव-जाल—गुण-शुभ्र-प्रकरं ।
वन्दे गिरिराजमहं विभरं ॥४॥

जो भव्यो की भावपूर्ण भावनाओ से सुशोभित हो रहा है, देव और मनुष्य जिसके आश्रय से प्रचुर भोगो का भोग करते रहते है और जो पृथ्वी मे से निकले हुए जल के शुभ गुणो से युक्त है, वैभव सम्पन्न उस गिरिराज की मैं वदना करता हूँ।

भद्रशाल–वन-परिधि-विशालं ।
दशविध—कल्पवृक्ष—कर—मालं ।
कनक—वर्ण-लक्षण—तनुमैन्द्रं ।
वन्दे गिरिराज महं विभरं ॥५॥

जहाँ पर भद्रशाल वन की विशाल परिधि है, जो दश प्रकार के कल्प वृक्षो की माला से युक्त है, जिसका रग सोने के समान है और जो पर्वतो में प्रधान है, वैभव सम्पन्न उस गिरिराज की मै वंदना करता हूँ।

स्फटिक—शिला–धर–कलश–निबद्धं ।
क्षीरोदधिनीर जल—शुद्ध ।
नाना—विभवं जन—ताप—हरं ।
वन्दे गिरिराजमहं विभरं ॥७॥

जो कलश युक्त स्फटिक मणि की शिला को धारण करता है, क्षीर समुद्र के जल से विशुद्ध है, प्राणियो के योग्य नाना प्रकार के वैभव से युक्त है और जनता के ताप को हरने वाला है, वैभव सम्पन्न उस गिरिराज की मै वंदना करता हूँ।

विविध-मणि निबद्धं भूगताभद्रशालं
कनक-रचित-भक्ति बद्धसोपान-पंक्तिम् ।

स्फटिक-विमल-सान्द्रं पाण्डुकाव्याप्त-देशं
भजत गिरिवरं तं ह्यर्घ्यपात्रैरनर्घैः ॥७॥

जो विविध प्रकार के मणियों से निबद्ध है, जिसके चारों ओर पृथ्वीगत भद्रशाल वन फैला हुआ है, जिसके पटल स्वर्ण रचित है. जो सोपान-पंक्ति से युक्त है, जो निर्मल स्फटिक मणि से सघन हो रहा है और जिसकी चारो ओर का ऊपर का भाग पाण्डुक वन से व्याप्त है उस गिरिराज की अमूल्य अर्घ्य पात्र से पूजा करो।

(ॐ ह्रीं अचलमेरुसम्बंधि जिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

सर्वव्रताधिपं सारं मुक्तिसौख्यकरं सताम् ।
पुष्पाञ्जलिव्रतं पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियम् ॥८॥

सभी व्रतों मे श्रेष्ठ, सारभूत और सज्जन पुरुषो को मुक्ति सुख देने वाला यह पुष्पाञ्जलि व्रत आप लोगो को को शाश्वत मोक्ष-लक्ष्मी प्रदान करे।

(आशीर्वादः)

मन्दिरमेरु

जिनान् संस्थापयाम्यत्राह्वाननादिविधानतः ।
मेरु-मंदिर-नामानः पुष्पाञ्जलि-विशुद्धये ॥१॥

मैं पुष्पाञ्जलि व्रत की विशुद्धता के लिए आह्वानन आदि विधि से मन्दिर मेरु सम्बंधी जिन प्रतिमाओ की स्थापना करता हूँ।

(ॐ ह्रीं मंदिरमेरुसम्बन्धि जिनप्रतिमासमूह ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् ।

(ॐ ह्रीं मंदिरमेरुसम्बन्धि जिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।

(ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि जिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।)

गंगागतैर्जल-चयैः सुपवित्रिताङ्गै
रम्यैः-सुशीतलतरैर्भव-ताप-हारैः ।
मेरुं यजेऽखिल सुरेन्द्र-समर्चनीयं
श्रीमन्दिरं वितत पुष्कर द्वीप संस्थम् ॥२॥

अङ्ग को पवित्र करने वाले, संसार के आतप को हरने वाले और अत्यन्त ठण्डे गंगा के रमणीक जल से सभी इन्द्रो से पूज्यनीय पुष्कर द्वीप मे स्थित श्री मदिर मेरु की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।)

काश्मीर कुंकुम रसैर्हरि चन्दनाद्यै
गंन्धोत्कटैर्वन-भवैर्घनसार-मिश्रैः ।
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्र-समर्चनीयं··· ॥३॥

वन में उत्पन्न हुए, अत्यन्त, सुगंधित और कपूर मिश्रित काश्मीरी केशर के रस से तथा हरिचदन आदि से सभी इन्द्रों से पूज्यनीय पुष्कर द्वीप में स्थित श्री मदिर मेरु की मैं पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं मंदिरमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।)

चन्द्रांशु–गौर–विहितैः कलमाक्षतौघै-
र्घ्राणप्रियैरवितथैर्विमलैरखण्डैः ।
मेरुं यजेऽखिल–सुरेन्द्र–समर्चनीयं··· ।।४।।

चन्द्रमा के समान स्वच्छ, घ्राण इन्द्रिय के लिए प्रिय लगने वाले, सच्चे, निर्मल और अखण्ड कलम धान्य के अक्षतो से सब इन्द्रों द्वारा पूज्य पुष्कर द्वीप के मंदिर मेरु की मैं पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं मंदिरमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।)

गन्धागतालि–निवहैः शुभ चम्पकादि-
पुष्पोत्करैरमरपुष्प–युतैर्मनोज्ञैः ।
मेरुं यजेऽखिल–सुरेन्द्र–समर्चनीयं··· ।।५।।

सुगंध से जिन पर भौंरे मँडरा रहे हैं ऐसे कल्प वृक्ष के पुष्प मिश्रित चम्पक आदि सुंदर पुष्पो से इन्द्रो द्वारा पूज्य पुष्कर द्वीप के श्री मदिर मेरु की मैं पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं मंदिरमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।)

स्वर्णादि–पात्र-निहितैर्घृत-पक्व-खण्डै-
र्नानाविधैर्घृ़तवरैः रसनेन्द्रियेष्टैः ।
मेरुं यजेऽखिल–सुरेन्द्र–समर्चनीयं··· ।।६।।

सोने के बर्तन में रखे हुए और रसेन्द्रिय के लिए प्रिय

अनेक प्रकार के घी के पकवानो से इन्द्रो द्वारा पूज्यनीय पुष्कर द्वीप के श्री मंदिर मेरु की मै पूजा करता हूँ।
(ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बंधि जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

कर्पूर-दीप-निचयैर्निहतान्धकारैः
सद्भासितांशु–निकरैः शुभ-कील-जालैः ।
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्र-समर्चनीयं ··· ॥७॥

जिनकी किरणे भासमान हो रही है और मनोहर ज्योति निकल रही है उन अन्धकार को नष्ट करने वाले अनेक दीपको से इन्द्रो द्वारा पूज्य पुष्कर द्वीप के श्री मन्दिर मेरु की मैं पूजा करता हूं।
(ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बंधि जिनबिम्बेभ्यो दीप निर्वपा–मीति स्वाहा।)

कालागुरु-त्रिदश–दारु-सुचन्दनादि–
द्रव्योद्भवैः सुभग-गन्ध-सधूप-धूम्रैः
मेरुं यजेऽखिल-सुरेन्द्र-समर्चनीयं ॥८॥

कालागुरु, देवदारु और हरिचन्दन आदि सुगंधित वस्तुओ की सुन्दर धूप बनाकर उसके धूँए से इन्द्रो द्वारा पूज्य पुष्कर द्वीप के श्री मंदिर मेरु की मै पूजा करता हूं।
(ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपा–मीति स्वाहा।)

नारङ्ग-पूग-पनसाम्र-सुमोच-चोचैः
शीलाङ्गुलि-प्रमुख-भव्य–फलैः सुरम्यैः ।
मेरुं यजेऽखिल–सुरेन्द्र-समर्चनीयं ··· ॥९॥

नारङ्गी, सुपारी, पनस, आम, केला, नारियल और शीलाङ्गलि प्रमुख सुन्दर तथा ताजे फलो से इन्द्रो द्वारा पूज्य पुष्कर द्वीप के श्री मन्दिर मेरु की मै पूजा करता हूं। (ॐ ह्री मन्दिरमेरुसम्बन्धि' जिनबिम्बेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।)

जलैः सुगंधाक्षत—चारु-पुष्पैर्नैवेद्य-दीपैर्वर-धूप-वर्गैः।
फलैर्महार्घ्यं ह्यवतारयामि श्रीरत्नचंद्रो यति-वृन्द-सेव्यः

जल, चन्दन, अक्षत, मनोहर पुष्प, नैवेद्य, श्रेष्ठ धूप और फलो से यतियो द्वारा पूज्यनीय श्री मदिर मेरु का मैं (रत्नचन्द्र) अर्घावतरण करता हूँ। (ॐ ह्रीं मन्दिरमेरुसम्बन्धिभद्रशालवननन्दनवनसौमनसवनपाण्डुकवनसम्बन्धिपूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थ-जिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो फल निर्वपामीति स्वाहा।)

जयमाला

प्रोद्यत्षोडश-लक्ष—योजन—मित-श्री-पुष्करार्ध-स्थितः
श्रीमत्पूर्व-विदेह-मन्दिर-गिरिर्देवेन्द्र—वृन्दार्चितः।
चञ्चत्पञ्च—सुवर्ण-रत्न-जडितो नाना-द्रुमौघोर्जितः
तत्सम्बंधि-जिनौकसां गुण-गणान् संस्तौम्यहं सर्वदा

सोलह लाख योजन का शोभा सम्पन्न पुष्करार्द्ध द्वीप है। उसके पूर्व विदेह मे इन्द्रो द्वारा पूज्य मन्दिर नाम का सुमेरु पर्वत है जो सुवर्ण और पॉच प्रकार के रत्नों से जड़ा हुआ है और नाना वृक्षो से संकीर्ण है उस पर्वत सम्बन्धी जिन-मंदिरो के गुणो की मैं सदा स्तुति करता हूँ।

देव-विद्याधरैश्चासुरैश्चर्चितं
किन्नरी-गीत-कल-गान-संजृंभितम् ।
नर्तितानेक-देवाङ्गना-सुन्दरं,
श्रीजिनागारवारं भजे भासुरम् ॥

देव, विद्याधर और असुर जिनकी पूजा करते हैं, किन्नरियों के गीतों की मधुर ध्वनि से जो मुखरित हो रहे हैं, अनेक देवाङ्गनाएँ जहाँ नृत्य करती है उन देदीप्यमान जिन मन्दिरों की मैं पूजा करता हूँ।

जन्मकल्याण-संमोहितामर-बलं,
दर्शितानेक—देवाङ्गना—सुन्दरम् ।
प्रोल्लसत्केतु—मालालयैः सुन्दरं,
श्रीजिनागारवारं भजे भासुरम् ॥

जहाँ जिनेन्द्र के जन्म-कल्याणक महोत्सव से देवों की सेना मोह ली जाती है अनेक सुन्दर देवाङ्गनाएँ दिखाई देती हैं और जो फहराती हुई अनेक प्रकार की ध्वजाओं से शोभायमान हो रहे हैं उन देदीप्यमान जिन-मन्दिरों की मैं पूजा करता हूँ।

धूप—घट—धूपितावास-शोभा-वरं,
रत्न—स्तम्भोर्जितालीभिराशाकुलम् ।
अष्ट—मंगल—महाद्रव्य—चय-सुन्दरं,
श्रीजिनागारवारं भजे भासुरम् ॥

जहाँ अनेक धूपघटों से कोठे महक रहे हैं, रत्न के खम्भों पर जहाँ चारों ओर भौंरे मँडरा रहे हैं और जहाँ

आठ महा मंगल द्रव्य रखे हुए हैं, उन देदीप्यमान जिन-मंदिरों की मैं पूजा करता हूँ ।

ताल-वीणा-मृदङ्गादि-पटह-स्वरं,
कल्पतरु-पुष्प-वापी-तडागाकरम् ।
जंघचारण-मुनिप्रागताशाकरम्,
श्रीजिनागारवारं भजे भासुरम् ॥

जहाँ सदा ताल, वीणा, मृदङ्ग और नगाड़े आदि बजते रहते है, कल्प वृक्ष, उनके फूल, बावड़ी और तालाब आदि मौजूद हैं और सदा जंघाचरण ऋद्धिधारी मुनियो का आवागमन बना रहता है उन देदीप्यमान जिन मन्दिरो की मैं पूजा करता हूं ।

रुचिरवर-मणिमयैः गोपुरैः संयुतं,
हर्म्यावली-लसन्मुक्त-मालावृतम् ।
तुङ्ग-तोरण-लसद्घंटिका-भङ्गुरं
श्रीजिनागारवरं भजे भासुरम् ॥

जो अत्यन्त सुन्दर मणिमयी सुन्दर दरवाजो से युक्त हैं, जहाँ के प्रासादो में मोतियो की मालाये लटक रही हैं और जो ऊँचे तोरणो मे लटकती हुई घण्टिकाओ से व्याप्त हैं उन देदीप्यमान जिन-मन्दिरो की मै पूजा करता हूं ।

विविध-विषय-भव्यं भव्य-संसारतारं
शतमख-शत-पूज्यं प्राप्त-सज्ज्ञान-पारम् ।
विषय-विषम-दुष्ट-व्याल-पक्षीशमीशं
जिनवर-निकरं तं रत्नचन्द्रो भजेऽहम् ॥१७॥

अनेक प्रकार की सामग्री से जो सुन्दर हैं, भव्य प्राणियो को संसार से तारने वाले है, सैकड़ो इन्द्र जिनकी पूजा करते हैं, जो सम्यग्ज्ञान के पार को प्राप्त हो चुके हैं और विषय रूपी भयंकर एवं दुष्ट सर्प के लिए जो गरुण के समान हैं उन जिनेन्द्र देव की प्रतिमाओ की मैं (रत्नचंद्र) पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं मदिरमेरुसम्बंधिभद्रशाल-नंदन-सौमनस-पाण्डुक-वनसम्बंधिपूर्वदक्षिणपश्चिमोत्तरस्थजिनचैत्यालयस्थ जिनबिम्बेभ्यो पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

सर्व- व्रताधिपं सारं सर्व-सौख्य- करं सताम् ।
पुष्पाञ्जलि- व्रत पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रिय ।।

सभी व्रतो मे श्रेष्ठ, सारभूत और सज्जनो को सुख देने वाला यह पुष्पाञ्जलि व्रत आप लोगो को शाश्वतिक मोहलक्ष्मी प्रदान करे।

[इत्याशीर्वाद]

विद्युन्मालीमेरु

जिनान्संस्थापयाम्यत्राह्वाननादि विधानतः ।
पुष्करे पश्चिमाशास्थान् विद्युन्मालि-प्रवर्तिनः।।१।।

पुष्पकर द्वीप के पश्चिम दिशा में स्थित विद्युन्माली मेरु सम्बन्धि जिन-प्रतिमाओ की मै आह्वानन आदि विधि से यहाँ पर स्थापना करता हूं।

(ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बंधिजिनप्रतिमासमूह ! अत्रावतर अवतर संवौषट् ।

(ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बंधिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठः ।

ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बंधिजिनप्रतिमासमूह ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।)

निर्मलैः सुशीतलैर्महापगा-भवैर्वनैः

शातकुम्भ-कुम्भगैर्जगज्जनाङ्ग-तापहैः ।

जैन-जन्म-मज्जनाम्भसः प्लवातिपावनैः

पञ्चमं सुमन्दिरं महाम्यहं शिवप्रदम् ।।२।।

संसार के जीवो के शरीर के ताप को हरने वाले जिनेन्द्र देव के जन्माभिषेक के जल के प्रवाह से पवित्र हुए महानदी के स्वर्ण कुम्भ मे रखे हुए शीतल जल से मुक्ति दायक पॉचवें सुमेरु की मै पूजा करता हू ।

(ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बंधि जिनबिम्बेभ्यो जन्मजरा-मृत्युविनाशनाय जल निर्वपामीति स्वाहा ।)

चन्दनैः सुचन्द्रसार-मिश्रितैः सुगन्धिभि-

रर्क-वेणु-मूलभूत-वर्जितैर्गुणोज्ज्वलैः ।

जैन-जन्म-मज्जनाम्भसः प्लवातिपावनं··· ।।३।।

आक, बॉस और जड़ आदि से रहित अपने सुगंध गुण से प्रकाशमान तथा कपूर से मिश्रित सुगधित चंदन से जिनेन्द्र देव के जन्माभिषेक के जल के प्रवाह से पवित्र और मुक्ति दायक पॉचवे सुमेरु पर्वत की मै पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बंधि "जिनबिम्बेभ्यो चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।)

इन्दु–रश्मि—हार-यष्टि–हेम–भास-भासितै-
रक्षतैरखण्डितैः सुवासितैर्मनः प्रियैः ।
जैन—जन्म—मज्जनाम्भसः प्लवातिपावनं''' ।।४।।

चन्द्रकिरण, हारलता और स्वर्ण आदि की तरह स्वच्छ अखण्ड और रुचिकर सुवासित अक्षतो से जिनेन्द्र देव के जन्माभिषेक सम्बधी जल के प्रवाह से पवित्र तथा मुक्ति दायक पॉचवे सुमेरु की मैं पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बंधि जिनबिम्बेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।)

गन्ध–लुब्ध—षट्पदैः सुपारिजात-पुष्पकैः
वारिजाति—कुन्द—देवपुष्प–मालती-भवैः ।
जैन-जन्म–मज्जनाम्भसः प्लवातिपावनं '' ।।५।।

सुगंध के लोभ से जिन पर भौंरे गुंजार कर रहे हैं ऐसे परिजात, कमल, कुन्द, लवङ्ग और मालती आदि फूलों से जिनेन्द्र देव के जन्माभिषेक सम्बंधी जल से पवित्र और मोक्षदायक पॉचवे सुमेरु की मै पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसंबंधि 'जिनबिम्बेभ्य. पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।

प्राज्य-पूर—पूरितैः सुखज्जकैः सुमोदकैः
इन्द्रिय—प्रभूतकरैः सुचारुभिश्चरूत्करैः ।
जैन–जन्म-मज्जनाम्भसः प्लवातिपावनं''' ।।६।।

रसनेन्द्रिय को तृप्त करने वाले और घी के पूर से पूरित खाजे और लड्डू आदि सुन्दर नैवेद्य से जिनेन्द्र देव के जन्माभिषेक सम्बधी जल से पवित्र और मोक्षदायक पॉचवे सुमेरु की मै पूजा करता हूं।
(ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसबधि जिनबिम्बेभ्यो नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।)

अन्धकार—भार—नाश-कारणैर्दशेन्धनैः

रत्न-सोमजैः प्रदीप्ति-भूषितैः शिखोज्ज्वलैः ।

जैन-जन्म-मज्जनाम्भसः प्लवातिपावनं··· ॥७॥

अधकार समूह का नाश करने वाले, मणिमयी अपनी काति से सुशोभित तथा उज्ज्वल शिखा वाले दीपको से जिनेन्द्र देव के जन्माभिषेक सम्बन्धी जल के प्रवाह से पविन और मोक्षदायक पॉचवे सुमेरु की मै पूजा करता हू।
(ॐ ह्री विद्युन्मालिमेरुसम्बधि जिनबिम्बेभ्यो दीप निर्वपामीति स्वाहा।)

सिल्हिकागुरूद्भवैः सुधूपकैर्नभोगतै-

र्गन्धिताश-चक्र-केश-वृन्दकैः प्रशस्तकैः ।

जैन-जन्म—मज्जनाम्भसः प्लवातिपावनं ·· ॥८॥

आकाश मे फले हुए धुएँ से दशो दिशाओ को सुगधित करने वाले ऐसे लोहवान और अगुरु आदि की धूप से जिनेन्द्र देव के अभिषेक सम्बंधी जल से पवित्र और मोक्ष दायक पॉचवे सुमेरु की मै पूजा करता हूं।
(ॐ ह्री विद्युन्मालिमेरुसम्बंधी ·· जिनबिम्बेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।)

कम्र-दाडिमैः सुमोच-चोचकैः शुभैः फलै-
र्मातुलिंग-नारिकेल-पूग-चूतकादिभिः ।
जैन-जन्म-मज्जनाम्भसः प्लवातिपावनं··· ॥६॥

सुन्दर अनार, केला, अण्डविजौरा, नारियल, सुपारी और आम आदि श्रेष्ठ फलों से जिनेन्द्र देव के जन्माभिषेक सम्बंधी जल से पवित्र और मोक्षदायक पाँचवे सुमेरु की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बन्धि जिनबिम्बेभ्यो फल निर्वपामीति स्वाहा।)

जल-गन्धाक्षतैः पुष्पैश्चरु-दीप सुधूपकैः ।
फलैरुत्तारयाम्यर्घ्यं विद्युन्मालि-प्रवर्तिनाम् ॥१०॥

जल, गंध, अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीप, धूप और फल से सुमेरु सम्बंधी जिन प्रतिमाओं को मैं अर्घ्य अर्पित करता हूं।

(ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बंधि जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

जयमाला

स्तुवे मन्दिरं पञ्चमं सद्गुणौघं,
समुत्तुंग—चैत्यालयं भासुरांगम् ।
चलद्रत्न-सोपान-विद्याधरीशं,
नमद्देव-नागेन्द्र-मर्त्येन्द्र-वृन्दम् ।

जहाँ पर उत्तुङ्ग चैत्यालय बने हुए हैं, जिसकी रत्नो की सीढियो पर विद्याधर नृप चढ़ते-उतरते हैं तथा इन्द्र, धरणेन्द्र और चक्रवर्ती जिन्हें नमस्कार करते हैं, अनेक विशेषताओ से परिपूर्ण उस देदीप्यमान पाँचवे सुमेरु की मै स्तुति करता हूँ।

भद्रशालाभिधारण्य—संशोभितं,
कोकिलानां कलालाप-संकूजितम् ।
पुष्कराद्धांचले संस्थितं मन्दिरं,
चञ्चलामालिनं पूजये सुन्दरम् ।।

जो भद्रशाल नामक वन से सुशोभित है और कोयले जहाँ मधुर गान करती है, पुष्करार्द्ध द्वीप मे स्थित उस सुन्दर विद्युन्माली मेरु की मै पूजा करता हूँ।

नन्दनैर्नन्दितानेकलोकाकरैर्भ्राजमानं,
सदाशोकवृक्षोत्करैः ।
पुष्कराद्धांचले संस्थितं मन्दिरं,
चञ्चलामालिनं पूजये सुन्दरम् ।।

जो अनेक प्राणियो को आनन्द देने वाले हैं और अशोक वृक्षो से शोभायमान हैं ऐसे नन्दन वनों से सुशोभित पुष्करार्द्ध द्वीपस्थ सुन्दर विद्युन्माली मेरु की मै पूजा करता हूं।

सौमनस्यैर्वरैः कल्पवृक्षादिभिः,
भ्राजमानं बुधगारकेत्वादिभिः ।

पुष्कराद्धचिले संस्थितं मन्दिरं,

चञ्चलामालिनं पूजये सुन्दरम् ।।

कल्प वृक्ष आदि से युक्त और देवो के प्रासाद में लगी हुई ध्वजाओ से युक्त सौमनस वनो से शोभायमान पुष्कराद्धं द्वीपस्थ सुन्दर विद्युन्माली मेरु की मे पूजा करता हूँ।

उर्ध्वगैः पाण्डुकैः काननै राजितं

पाण्डुकाख्याशिलाभिः समालिङ्गितम्

पुष्कराद्धाचले संस्थितं मन्दिरं

चञ्चलामालिनं पूजये सुन्दरम् ।।

सबसे ऊपर पाण्डुक शिलाओ से युक्त व पाण्डुक वनो से सुशोभित पुष्करार्ध द्वीपस्थ सुन्दर विद्युन्माली मेरु की मै पूजा करता हूँ।

निर्जितानेकरत्नप्रभाभासुरं

दिक्‌चतुष्काश्रितार्हत्प्रभाभासुरम् ।

पुष्कराद्धाचले संस्थितं मन्दिरं

चञ्चलामालिनं पूजये सुन्दरम् ।।

दूसरो को तिरस्कृत करने वाले रत्नो की प्रभा से देदीप्यमान और चारो दिशाओ मे स्थित जिन प्रतिमाओ की प्रभा से प्रकाशमान पुष्कराद्धं दीपस्थ सुन्दर विद्युन्माली मेरु की मै पूजा करता हू।

घत्ता

घण्टा-तोरण-तारिकाब्ज-कलशैश्छत्राष्ट-द्रव्यैः परैः

श्री-भामण्डल-चामरैः सुरचितैश्चंद्रोपकरणादिभिः

त्रैकाल्ये वर-पुष्प-जाप्य-जपनैर्जैनः करोत्वर्चनां
भव्यैर्दान-परायणैः कृतदयैः पुष्पाञ्जलेः शुद्धये ॥

घण्टा, तोरण झालर, कमलो से सुशोभित कलश, छत्र, आठ मङ्गल द्रव्य, लक्ष्मी, भामण्डल, चमर और उत्तम प्रकार से बनाया गया चंदोवा इन द्रव्यो को लेकर तीनों काल मे उत्तम पुण्य जाप जपने वाले, दान देने मे तत्पर तथा दयायुक्त भव्य जीवो के साथ आत्म शुद्धि के लिए उत्तम पुष्पाञ्जलि व्रत करना चाहिए।

(ॐ ह्रीं विद्युन्मालिमेरुसम्बंधि' 'जिनबिम्बेभ्योऽर्घ्यं निर्व-मीति स्वाहा ।

सर्वव्रताधिपं सारं सर्वसौख्यकरं सताम् ।
पुष्पाञ्जलिव्रतं पुष्याद्युष्माकं शाश्वतीं श्रियम् ॥

सभी व्रतो मे श्रेष्ठ, सारभूत और सज्जनो को सुख-कारी पुष्पाञ्जलिव्रत आप सबको शाश्वतिक लक्ष्मी प्रदान करे।

(इत्याशीर्वाद.)

दशलक्षण-पूजा

उत्तम-क्षान्तिकाद्यन्त-ब्रह्मचर्य—सुलक्षणम् ।

स्थापयेद्दशधा धर्ममुत्तमं जिनभाषितम् ।।१।।

मैं जिनेन्द्र देव के द्वारा प्रतिपादित उत्तम क्षमा से लेकर ब्रह्मचर्य पर्यंत उत्तम लक्षण वाले दशलक्षण धर्म की स्थापना करता हूं।

(ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्रावतर अवतर संवौषट
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ. ठ. ।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्म ! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् ।

प्रालेय-शैल—शुचि-निर्गत—चारु-तोयैः

शीतैः सुगन्ध-सहितैर्मुनि-चित्त-तुल्यैः ।

संपूजयामि दशलक्षण—धर्ममेकं

संसार-ताप-हननाय शमादियुक्तम् ।।

हिमालय से निकले हुए शीतल सुगन्धित और मुनि के हृदय के समान पवित्र जल से संसार का संताप दूर करने के लिए मैं क्षमादि रूप दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसयमतपस्त्यागाकिञ्चन्यब्रह्मचर्यधर्मेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।)

श्रीचन्दनैर्बहुल-कुङ्कुम-चन्द्र-मिश्रैः

संवास-वासित-दिशा-मुख-दिव्य-संस्थैः ।

संपूजयामि दश—लक्षण-धर्ममेकं ··· ।।

अपनी सुगंध से दशों दिशाओं को सुगंधित करने वाले गाढी केशर और कपूर से मिश्रित चन्दन से मैं क्षमादि रूप दशलक्षण धर्म की संसार का ताप दूर करने के लिए पूजन करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय संसार-तापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।)

शालीय-शुद्ध-सरलामल-पुण्य-पुञ्जैः

रम्यैरखण्ड-शश-लाञ्छन-रूप-तुल्यैः ।।

संपूजयामि दश-लक्षण-धर्ममेकं··· ।।

सरल, स्वच्छ, सुन्दर, अखण्ड और चंद्रमा के समान शुक्ल रूप वाले शुद्ध अक्षतों से मैं क्षमादि रूप दशलक्षण धर्म की संसार का संताप दूर करने के लिए पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्री उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्माङ्गाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।)

मन्दार-कुन्द-बकुलात्पल-पारिजातैः

सुगन्ध-सुरभीकृतमूर्ध्वलोकैः ।

संपूजयामि दश-लक्षण-धर्ममेकं ··· ।।

अपनी सुगध से ऊर्ध्व लोक को सुगंधित करने वाले मंदार, कुन्द, बकुल, कमल और पारिजात के फूलों से क्षमादि रूप दश लक्षण धर्म की मैं संसार का ताप दूर करने के लिए पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्री उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्प निर्वपामीति स्वाहा ।)

अत्युत्तमैः षड्—रसादिक—सद्यजातै-
नैवेद्यकैश्च परितोषित-भव्य-लोकैः ।
संपूजयामि दश—लक्षण—धर्ममेकं ··· ।।

भव्य जीवो को तुष्ट करने वाले और छह रसो से परिपूर्ण ताजे नैवेद्य से ससार का ताप दूर करने के लिए क्षमादि रूप दशलक्षण धर्म की पूजा करता हू।
(ॐ ह्री उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा।)

दीपैर्विनाशित—तमोत्कररुद्ध—नेत्रैः
कर्पूर—र्वति—ज्वलितोज्ज्वल-भाजनस्थैः ।
संपूजयामि दश—लक्षण—धर्ममेकं ··· ।।

अन्धकार को दूर कर नेत्रो को प्रकाशित करने वाले और भाजन मे रखे हुए कपूर के जलते हुए दीपक से ससार का ताप दूर करने के लिए मै उत्तम क्षमादि रूप दशलक्षण धर्म की पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।)

कृष्णागुरु—प्रभृति—सर्व—सुगन्ध—द्रव्यै-
र्धूपैस्तिरोहित—दिशा-मुख-दिव्य-धूम्रैः ।
संपूजयामि दश-लक्षण—धर्ममेक ··· ।।

अपने सुगधित धुएँ से दसो दिशाओ को तिरोहित करने वाली कालागुरु आदि सम्पूर्ण गन्धद्रव्यो की धूप से

संसार का संताप दूर करने के लिए क्षमादि रूप दशलक्षण धर्म की मैं पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय दुष्टाष्टकर्मदहनाय निर्वपामीति स्वाहा ।)

पूगैर्लवङ्ग-कदली–फल–नारिकेल-
हृद्-घ्राण-नेत्र–सुखदैः शिव-दान-दक्षैः ।
संपूजयामि दश–लक्षण–धर्ममेकं
संसार–ताप-हननाय शमादि-युक्तम् ॥

हृदय, नाक और नेत्रो को सुख देने वाले और मोक्ष प्रदान करने मे समर्थ सुपारी, लौंग, केला और नारियलो से ससार का सताप दूर करने के लिए क्षमादि रूप दश लक्षण धर्म की मैं पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशधर्माङ्गाय मोक्षफलप्राप्तये फल निर्वपामीति स्वाहा ।)

पानीय-स्वच्छ-हरि-चन्दन-पुष्प–सारैः
शालीय–तन्दुल-निवेद्य-सुचन्द्र- दीपैः ।
धूपैः फलावलि–विनिर्मित-पुष्पै-गन्धैः
पुष्पाञ्जलीभिरिह धर्ममहं समर्चे ॥

स्वच्छ जल, हरिचन्दन, उत्तम पुष्प, शालि के अक्षत, नैवेद्य, कपूर के दीपक और धूपकी तथा अपने फूलो के अनुरूप गन्ध वाले फलो की पुष्पाञ्जलि से संसार का तापदूर करने के लिए क्षमादि रूप दशलक्षण धर्मकी मै पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिञ्चन्य ब्रह्मचर्यधर्मेभ्योऽनर्घ्यपदप्राप्तयेऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा)

अंगपूजा – क्षमाधर्मः

कोपादि-रहितां सारां सर्वसौख्याकरां क्षमाम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ।।

कोप आदि से रहित, सारभूत और सब सुखो की आकर रूप क्षमा की मैं उसकी प्राप्ति के लिए परम भक्ति पूर्वक पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

उत्तम- खम मद्दउ अज्जउ सच्चउ
पुणु सउच्च संजमु सुतउ ।
चाउ वि आकिंचणु भव-भय-वंचणु
बंभचेरु धम्मु जि अखउ ।।

संसार का भय दूर करने वाले उत्तम क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, सयम, तप, त्याग, आकिञ्चन और ब्रह्मचर्य ये अविनाशी दश धर्म हैं ।

उत्तम-खम तिल्लोयहँ सारी,
उत्तम-खम जम्मोदहितारी ।
उत्तम-खम रयण-त्तय-धारी,
उत्तम-खम दुग्गइ-दुह—हारी ।।

उत्तम क्षमा तीन लोक में सार है, उत्तम क्षमा जन्म मरण रूपी संसार से तारने वाली है, उत्तम क्षमा रत्नत्रय को प्राप्त कराती है और उत्तम क्षमा दुर्गति के दुःखों को हरण करती है ।

उत्तम—खम गुण-गण-सहयारी,
उत्तम—खम मुणिविंद—पियारी ।
उत्तम—खम बुहयण-चिंतामणि,
उत्तम—खम संपज्जइ थिर-मणि ।।

उत्तम क्षमा से अनेक गुण प्राप्त होते हैं, उत्तम क्षमा मुनि—वृन्द को प्यारी है, उत्तम क्षमा ज्ञानी जनों के लिए चिन्तामणि के समान है और उत्तम क्षमा मन के स्थिर होने पर प्राप्त होती है।

उत्तम—खम महणिज्ज सयलजणि,
उत्तम-खम मिच्छत्त-तमो—मणि ।
जहिं असमत्थहं दोसु खमिज्जइ,
जहिं असमत्थहंण उ रूसिज्जइ ।।

उत्तम क्षमा सब प्राणियो के द्वारा पूज्य है और उत्तम क्षमा मिथ्यात्व रूपी तम को दूर करने के लिए मणि के समान है। जहाँ असमर्थ पुरुषों के दोष क्षमा किये जाते हैं, जहाँ असमर्थ व्यक्तियो पर रोष नहीं किया जाता है।

जहिं आकोसण वयण सहिज्जइ,
जहिं- पर-दोसु ण जणि भासिज्जइ ।
जहिं चेयण-गुण चित्त धरिज्जइ,
तहिं उत्तम-खम जिणें कहिज्जइ ।।

जहाँ कठोर वचन सहन किये जाते हैं, जहाँ दूसरो के दोष नहीं कहे जाते हैं और जहाँ चेतन के गुण चित्त मे धारण किये जाते हैं वहाँ उत्तम क्षमा होती है। ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

घत्ता

इय उत्तम-खम-जुय णर-सुर-

खग-णुय केवलणाणु लहेवि थिरु ।।

हुय सिद्ध णिरंजणु भव-दुह-भंजणु

अगणिय-रिसि-तुङ्गव जि चिरु ।।

इस प्रकार उत्तम क्षमा से युक्त मनुष्य, देव और विद्याधरों से वन्दित तथा भव दु:ख का नाश करने वाले अगणित ऋषि पुङ्गव अविनश्वर केवल ज्ञान को प्राप्त कर कर्म कलङ्क से रहित हो सिद्ध हो गये हैं।

(ॐ ह्रीं उत्तमक्षमाधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

मार्दवधर्मः

त्यक्त-मानं सुखागारं मार्दवं कृपयान्वितम् ।
पूजाया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ।।१।।

मान रहित, सुख का आलय और कृपा से युक्त मार्दव धर्म की, उसकी प्राप्ति के लिए, मैं बड़ी भक्ति के साथ पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय नम: जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

मद्दउ भव-मद्दणु माण-णिकंदणु

दय-धम्महु मूल जि विमलु ।

सव्वहं हिययारउ गुण-गण सारउ

तिसहु वउ संजम सहलु ।।२।।

मार्दव धर्म संसार का नाश करने वाला है, मान का मर्दन करने वाला है, दया धर्म का मूल है, निर्मल है, सबका

हित कारक है, और गुणो में श्रेष्ठ है। व्रत और संयम उसी से सफल होते हैं।

मद्दउ माण-कसाय-विहंडणु,
मद्दउ पंचिंदिय—मण—दंडणु ।
मद्दउ धम्मे करुणा-वल्ली,
पसरइ चित्त-महीहिं णवल्ली ।।३।।

मार्दव धर्म मान कषाय का नाश करता है और मार्दव धर्म पाँचो इन्द्रिय और मन का निग्रह करता है। मार्दव धर्म करुणा रूपी नूतन लता है जो चित्त रूपी पृथ्वी पर फैलती है।

मद्दउ जिणवर-भत्ति पयासइ,
मद्दउ कुमइ-पसरु णिण्णासइ ।
मद्दवेण बहुविणय पवट्टइ,
मद्दवेण जणवइरु उहट्टइ ।।४।।

मार्दव धर्म जिनेन्द्र देव की भक्ति प्रकट करता है, मार्दव धर्म कुबुद्धि का प्रसार रोकता है, मार्दव धर्म से विनय बहुत अधिक प्रकाश मे आती है और मार्दव धर्म से मनुष्य का बैर दूर हो जाता है।

मद्दवेण परिणाम-विशुद्धि,
मद्दवेण विहु लोयहं सिद्धी ।
मद्दवेण दो-विहु तउ सोहइ,
मद्दवेण णरु तिजगु विमोहइ ।।५।।

मार्दव धर्म से परिणामो में विशुद्धि आती है, मार्दव

धर्म से उभय लोक की सिद्धि होती है, मार्दव धर्म से दोनों प्रकार का तप सुशोभित होता है और मार्दव धर्म से मनुष्य तीनो लोकों के प्राणियों को मोहित कर लेता है।

मद्दउ जिण-सासण जाणिज्जइ,
अप्पा-पर—सरूव भाविज्जइ।
मद्दउ दोस असेस णिवारइ,
मद्दउ जम्म—उअहि उत्तारइ ॥६॥

मार्दव धर्म से जैन शासन का ज्ञान तथा अपने और पर के स्वरूप का प्रतिभास होता है। मार्दव धर्म सभी दोषो का निवारण करता है तथा मार्दव धर्म संसार समुद्र से पार कर देता है।

घत्ता

सम्मद्दंसण-अंगु मद्दउ परिणामु जि मुणहु।
इय परियाणि विचित्त मद्दउ धम्मु अमल थुणहु ।७।

मार्दव परिणाम, सम्यग्दर्शन का अंग है, ऐसा जानकर अद्भुत और निर्मल मार्दव धर्म की स्तुति करो।

(ॐ ह्रीं उत्तममार्दवधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

आर्जव धर्मः

आर्जवं स्वर्ग-सोपानं कौटिल्यादिविवर्जितम्।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥

आर्जव धर्म स्वर्ग का सोपान है और कुटिलता से रहित है। उसकी मैं भक्ति पूर्वक आर्जव धर्म की प्राप्ति के लिए बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं परब्रह्मणे आर्जवधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

धम्मह् वर लक्खणु अज्जउ थिर-
मणु दुरिय-विहडणु सुह-जणणु ।
तं इत्थ जि किज्जइ तं पालिज्जइ
तं णि सुणिज्जइ खय-जणणु ।।

आर्जव धर्म का श्रेष्ठ लक्षण है, मन को वह स्थिर करने वाला है, पापनाशक है और सुख को उत्पन्न करने वाला है। वह पापों का क्षय करने वाला है, इसलिये उसे इस भव में आचरण मे लाओ, उसी का पालन करो और उसी का श्रवण करो।

जारिसु णिजय-चित्ति चिंतिज्जइ,
तारिसु अण्णहं पुणु भासिज्जइ ।
किज्जइ पुणु तारिसु सुह-संचणु,
तं अज्जउ गुण मुणहु अवंचणु ।।

अपने मन मे जैसा विचार करे वही दूसरो से कहे और उसी प्रकार कार्य करे। इसे सुख का देने वाला आर्जव धर्म जानो ।

माया-सल्लु मणहु णिस्सारहु,
अज्जउ धम्मु पवित्तु वियारहु ।
वउ तउ मायावियहु णिरत्थउ,
अज्जउ सिव-पुर-पंथहु सत्थउ ।।

मन से माया शल्य निकाल दो और पवित्र आर्जव धर्म का विचार करो। मायावी पुरुष के व्रत, तप सब निरर्थक हैं। आर्जव धर्म शिवपुर का प्रशस्त मार्ग है।

जत्थ कुडिल परिणामु चइज्जइ,
तहिं अज्जउ धम्मु जि संपज्जइ।
दंसण—णाण सरूव अखंडउ,
परम-अतिंदिय-सुक्ख-करंडउ ॥४॥

जहाँ कुटिल परिणाम छोड़ दिये जाते है वहीं आर्जव धर्म प्राप्त होता है। यह अखण्ड दर्शन और ज्ञानरूप है तथा परम अतीन्द्रिय सुख का पिटारा है।

अप्पिं अप्पउ भवहु तरंडउ,
एरिसु चेयण–भाव पयंडउ।
सो पुणु अज्जउ धम्मे लब्भइ,
अज्जवेण वइरिय-मणु खुब्भइ ॥

स्वयं ही आत्मा को भव समुद्र से तारने वाला है। इस प्रकार का प्रचण्ड जो चैतन्य भाव है वह आर्जव धर्म से ही प्राप्त होता है। आर्जव धर्मके कारण शत्रु का मन भी क्षुब्ध हो जाता है।

घत्ता

अज्जउ परमप्पउ गय-संकप्पउ
चिम्मित्तु जि सासउ अभउ।
तं णिरु झाइज्जइ संसउ हिज्जइ
पाविज्जइ जिहिं अचल-पउ ॥

आर्जव धर्म परमात्म स्वरूप है, संकल्प रहित है, चैतन्य स्वरूप आत्मा का मित्र है, शाश्वत है और अभय रूप है। जो उसका ध्यान करता है और शंका का त्याग करता है उसे अविनाशी मोक्ष-पद की प्राप्ति होती है।

(ॐ ह्रीं उत्तमार्जवधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

सत्यधर्मः

असत्य–दूरगं सत्यं वाचा सर्व-हितावहम्।

पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥

असत्य से रहित और सबका हित करने वाले सत्य वचन की मै उसकी प्राप्ति के लिए भक्ति पूर्वक बडी विभूति के साथ पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं सत्यधर्माङ्गाय नम' जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

दय-धम्महु कारणु दोस-णिवारणु

इह–भवि पर-भवि सुक्खयरु।

सच्चु जि वयणुल्लउ भुवणि

अतुल्लउ बोलिज्जइ वीसासधरु ॥२॥

सत्य धर्म दया धर्म का कारण है, दोषो का निवारण करने वाला है तथा इस लोक में और परलोक मे सुख को देने वाला है। विश्व में सत्य वचन तुलना रहित है, अर्थात् इसकी कोई बराबरी नहीं कर सकता। इसे विश्वास के साथ बोलना चाहिए।

सच्चु जि सव्वहं धम्महं पहाणु,
सच्चु जि महियलि गरुउ विहाणु ।
सच्चु जि संसार-समुद्द-सेऊ,
सच्चु जि सव्वहं मण-सुक्ख-हेउ ।।३।।

सत्य सब धर्मों मे प्रधान है, सत्य मही तल पर सबसे बडा विधान है, सत्य नियम से संसार-समुद्र से तारने के लिए पुल के समान है और सत्य सब जीवों के मन मे सुख उत्पन्न करने का हेतु है।

सच्चेण जि सोहइ मणुव-जम्मु,
सच्चेण पवत्तउ पुण्ण कम्मु ।
सच्चेण सयल गुण—गण महंति,
सच्चेण तियस सेवा वहंति ।।४।।

सत्य से मनुष्य जन्म शोभा पाता है, सत्य से ही पुण्य कर्म प्रवृत्त होता है, सत्य से सब गुणो का समुदाय महानता को प्राप्त होता है और सत्य के कारण ही देव सेवाव्रत स्वीकार करते हैं।

सच्चेण अणुव्वय—महव्वयाइं,
सच्चेण विणासइ आवयाइं ।
हिय-मिय भासिज्जइ णिच्च भास,
ण वि भासिज्जइ पर-दुह-पयास ।।५।।

सत्य से अणुव्रत और महाव्रत प्राप्त होते हैं और सत्य से आपदाये नष्ट हो जाती हैं। सदा हित और मित

वचन बोलना चाहिए। जिनसे दूसरों को दुःख हो ऐसे वचन कभी नहीं बोलें।

पर-बाहा-यरु भासहु म भव्वु,
सच्चु जि तं छंडहु विगय-गव्वु।
सच्चु जि परमप्पउ अत्थि इक्कु,
सो भावहु भव-तम-दलण-अक्कु ॥६॥

हे भव्य! दूसरो को बाधा करने वाला वचन कभी मत बोलो। यदि वह सत्य भी हो तो गर्व रहित होकर उसे त्याग दो। सत्य ही एक मात्र परमात्मा है। वह भव रूपी अन्धकार का दलन करने के लिए सूर्य के समान है। उसका निरन्तर आराधन करो।

घत्ता

रुंधिज्जइ मुणिणा वयण-गुत्ति,
जं खणि फिट्टइ संसार-अत्ति ॥७॥

मुनि वचन-गुप्ति का निरोध करते हैं। वह क्षण मात्र मे ससार की पीड़ा का अन्त कर देती है।

सच्चु जि धम्म-फलेण केवलणाणु लहेइ जणु।
तं पालहु भो भव्व भणहु म अलियउ इह वयणु

मनुष्य सत्य धर्म के फल स्वरूप केवल ज्ञान को नियम से प्राप्त करता है। हे भव्य! उसका पालन करो और लोक मे अलीक वचन मत बोलो।

(ॐ ह्रीं सत्यधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

शौचधर्मः

शौचं लोभ-विनिर्मुक्तं मुक्ति-श्री-चित्त-रञ्जकम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ।।

लोभ से रहित और मुक्ति रूपी लक्ष्मी के चित्त को अनुरञ्जित करने वाले शौच धर्म मैं उसकी प्राप्ति के लिए भक्ति पूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूँ ।
(ॐ ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमशौचधर्माङ्गाय नम. जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

सउच जि धम्मंगउ तं जि
अभंगउ भिण्णंगउ उवओगमउ ।
जर-मरण-विणासणु तिजगपयासणु
झाइज्जइ अह-णिसि जि धुउ ।।

शौच धर्म का अङ्ग है, अभङ्ग है, शरीर से भिन्न है, उपयोग मय है जरा और मरण का विनाश करने वाला है, तीन लोक को प्रकाशित करने वाला है और ध्रुव है उसका दिन-रात ध्यान करो ।

धम्म सउच्चु होइ मण-सुद्धिए,
धम्म सउच्चु वयण-धण-गिद्धिऐ ।
धम्म सउच्चु कसाय अहावें,
धम्म सउच्चु ण लिप्पइ पावें ।।

शौच धर्म मन की शुद्धि से होता है, शौच धर्म वचन

धन की पकड़ से होता है, शौच धर्म कषायों के अभाव से होता है और शौच धर्म पापों से लिप्त नहीं करता।

धम्म सउच्चु लोहु वज्जंतउ,
धम्म सउच्चु सुतव—पहि जंतउ ।
धम्म सउच्चु बंभ-वय धारणि,
धम्म सउच्चु मयट्ठ णिवारणि ।।

शौच धर्म लोभ का वर्जन करता है, शौच धर्म उत्तम तप के मार्ग पर ले चलता है, शौच धर्म ब्रम्हचर्य के धारण करने से होता है और शौच धर्म आठ मदो के निवारण करने से होता है ।

धम्म—सउच्चु जिणायम—भणणे,
धम्म सउच्चु सगुण—अणुमणणे ।
धम्म सउच्चु सल्ल-कय-चाए,
धम्म सउच्चु जि णिम्मलभाए ।।

शौच धर्म जिनागम का कथन करने से होता है। शौच धर्म आत्म गुणो का निरन्तर मनन करने से होता है, शौच धर्म तीन शल्यो का त्याग करने से होता है और शौच धर्म निर्मल भावो के बनाये रखने से होता है ।

अहवा जिणवर-पुज्जं विहाणें,
णिम्मल फासुय—जल-कय-ण्हाणें ।
तं पि सउच्चु गिहत्थहं भासिउ,
ण वि मुणिविरहं कहिउ लोयासिउ ।।

अथवा शौच धर्म जिनवर की विधि पूर्वक पूजा करने से और निर्मल प्रासुक जल से स्नान करने से होता है। किन्तु यह लोकाश्रित शौच धर्म गृहस्थो के लिए ही कहा गया है, मुनिवरों के लिए नहीं।

घत्ता

भव मुणिवि अणिच्चउ धम्म
सउच्चउ पालिज्जइ एयग्गमणि ।
सुह-मग्ग सहायउ सिव-पय-दायउ
अण्णु म चितह किं पि खणिं ।।

संसार को अनित्य जानकर एकाग्र मन से इस शौच-धर्म का पालन करना चाहिए। यह सुख के मार्ग का सहायक है और मोक्ष पद को देने वाला है। इसके सिवा अन्य किसी का क्षण मात्र के लिए चिन्तवन मत करो।

(ॐ ह्रीं उत्तमशौचधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

संयमधर्मः

दयाढयं संयमं मुक्तिकर्तारं स्वेच्छयातिगम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ।।1।।

मुक्ति के दाता और स्वेच्छा से प्राप्त दयामय संयम धर्म को मै उसकी प्राप्ति के लिए भक्ति पूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमसंयमधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

संजमु जणि दुल्लहु तं पाविल्लहु

जो छंडइ पुणु मूढमइ ।

सो भमइ भवावलि जर-

मरणावलि किं पावेसइ पुणु सुगइ ।।

सयम धर्म लोक मे दुर्लभ है । जो मूढमति उसे प्राप्त कर छोड देता है वह जरा और मरण के चक्र रूप संसार मे अनेक योनियों मे भ्रमण करता फिरता है । भला वह सुगति को कैसे प्राप्त कर सकता है ।

संजमु पंचिंदिय-दंडणेण,

संजमु जि कसाय--विहंडणेण ।

संजमु दुद्धर-तव-धारणेण,

संजमु रस-चाय-वियारणेण ।।३।।

सयम पॉच इन्द्रियो का दमन करने से होता है, संयम कषायो का निग्रह करने से होता है, सयम दुर्धर तप के धारण करने से होता है और संयम रस त्याग तप का बार बार चिन्तवन करने से होता है ।

संजमु उववास-विजंभणेण,

संजमु मण--पसरहं थंभणेण ।

संजमु गुरु-काय-किलेसणेण,

संजमु परिगह-गह-चायणेण ।।४।।

संयम उपवासों के बढ़ाने से होता है, संयम मन के प्रसार को रोकने से होता है, संयम बहुत कायक्लेश करने

से होता है और संयम परिग्रह रूपी ग्रह का त्याग करने से होता है ।

संजमु तस—थावर—रक्खणेण,

संजमु सत्तत्थ—परिक्खणेण ।

संजमु तणु-जोय-णियंतणेण,

संजमु बहु—गमणु चयंतएण ।।५।।

संयम त्रस और स्थावर जीवो की रक्षा करने से होता है, संयम सात तत्वो की परीक्षा करने से होता है, संयम काय योगका नियंत्रण करने से होता है और संयम बहुत गमन का त्याग करने से होता है ।

संजमु अणुकंप कुणंतएण,

संजमु परमत्थ—वियारणेण ।

संजमु पोसइ दंसणहं पंथु,

संजमु णिच्छय णिरु मोक्ख-पंथु ।।६।।

संयम अनुकम्पा करने से होता है, सयम परमार्थ की बार-बार भावना करने से होता है, संयम सम्यग्दर्शन के मार्ग को पुष्ट करता है और संयम एक मात्र मोक्ष का मार्ग है ।

संजमु विणु णर-भव सयलु सुण्णु

संजमु विणु दुग्गइ जि उववण्णु ।

संजमु विणु घडिय म इत्थ जाउ,

संजमु विणु विहलिय अत्थि आउ ।।७।।

संयम के बिना पूरा मनुष्य भव शून्य के समान है। संयम के बिना यह जीव नियम से दुर्गति में जन्म लेता है। सयम के बिना एक घडी भी व्यर्थ मत जाओ। संयम के बिना सम्पूर्ण आयु विफल है।

घत्ता

इह-भवि पर-भवि संजमु सरणु
हुज्जउ जिणणाहें भणिउ।
दुग्गइ-सर-सोसण-खर-किरणोवम
जेण भवालि विसमु हणिउ ॥८॥

इस भव मे और पर भव मे संयम ही शरण हो सकता है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है। यह दुर्गति रूपी तालाब का शोषण करने के लिए तीक्ष्ण किरणों के समान है इससे ही विषम भव भ्रमण का नाश होता है।

(ॐ ह्रीं संयमधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

तपोधर्मः

कामेन्द्रियदमं सारं तपः कर्मारिनाशनम्।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥

कामेन्द्रिय का दमन करने वाले, सारभूत और कर्म शत्रु का नाश करने वाले तप धर्म की मैं उसकी प्राप्ति के लिए भक्ति पूर्वक बडी विभूति के साथ पूजा करता हू।

(ॐ ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमतपोधर्माङ्गाय नम. जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

णर-भव पावेप्पिणु तच्च मुणेप्पिणु
खचिवि पंचिंदिय समणु ।
णिव्वेउ पमंडिवि संगइ छंडिवि
तउ किज्जइ जाएवि वणु ॥२॥

नर भव को पाकर तत्वो का मनन करके, मन के साथ पाँच इन्द्रियो का दमन करके, निर्वेद को प्राप्त होकर और परिग्रह का त्याग कर वन मे जाकर भी तप करना चाहिए।

त उ जहिं परिगहु छंडिज्जइ,
तं तउ जहिं मयणु जि खंडिज्जइ ।
तं तउ जहिं णग्गत्तणु दीसइ,
तं तउ जहिं गिरिकंदरि णिवसइ ॥३॥

तप वह है जहाँ परिग्रह का त्याग किया जाता है, तप वह है जहाँ काम को भी नाश कर दिया जाता है, तप वह है जहाँ नग्नता दिखाई देती है और तप वह है जहा गिरिकन्दराओ मे निवास किया जाता है।

तं तउ जहिं उवसग्ग सहिज्जइ,
तं तउ जहिं रायाइं जिणिज्जइ ।
तं तउ जहिं भिक्खइ भुंजिज्जइ,
सावय-गेह कालि णिवसिज्जइ ॥४॥

तप वह है जहाँ उपसर्गों को सहन किया जाता है, तप वह है जहाँ रागादि भावों को जीता जाता है, तप वह है। जहाँ भिक्षा पूर्वक भोजन किया जाता है और श्रावक के घर योग्य काल तक निवास किया जाता है।

तं तउ जत्थ समिदि परिपालणु,
तं तउ गुत्ति-त्तयहं णिहालणु ।
तं तउ जहिं अप्पापरु बुज्झिउ,
तं तउ जहिं भव-माणुज्जि उज्झिउ ॥५॥

तप वह है जहाँ समितियो का पालन किया जाता है, तप वह है जहाँ तीन गुप्तियों की और सम्यक् ध्यान किया जाता है, तप वह है जहाँ अपने और दूसरे के स्वरूप का विचार किया जाता है और तप वह है जहाँ पर्याय के अहंकार का त्याग कर दिया जाता है।

तं तउ जहिं ससरूव मुणिज्जइ,
तं तउ जहिं कम्महं गणु खिज्जइ ।
तं तउ जहिं सुर भत्ति पयासइ,
पवयणत्थ भवियणहं पभासइ ॥६॥

तप वह है जहाँ अपने स्वरूप का मनन किया जाता है, तप वह है जहाँ कर्मों का नाश किया जाता है, तप वह है जहाँ देवगण अपनी भक्ति प्रकाशित करते हैं और तप वह है जहाँ भव्य जीवो के लिए प्रवचनार्थ का कथन किया जाता है।

जेण तवें केवलु उप्पज्जइ,
सासय सुक्खु णिच्च संपज्जइ ॥७॥

तप वह है जिसके होने पर नियम से केवलज्ञान उत्पन्न होता है और नित्य शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है।

घत्ता

बारह-विहु तउ वरु दुग्गइ

परिहरु तं पूजिज्जइ थिरगणिणा ।

मच्छरु मउ छंडिवि करणइं

दडिवि तं पि धरिज्जइ गउरविणा ।।८।।

बारह प्रकार का तप उत्तम है और दुर्गति का परिहार करने वाला है। स्थिर मन होकर उसका आदर करना चाहिए और गौरव के साथ जीवों को मद-मात्सर्य का त्याग कर और पाँच इन्द्रियों का दमन कर उसे धारण करना चाहिए।

(ॐ ह्री उत्तमतपोधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

त्यागधर्मः

त्यक्तसंगं मुदात्यन्तं त्यागं सर्वसुखाकरम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ।।१।।

जो परिग्रह के त्याग से प्राप्त होता है और सब प्रकार के सुखों का आकर है उस त्याग धर्म की मैं उसकी प्राप्ति के लिए मोद और भक्ति पूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्री परमब्रह्मणे उत्तमत्यागधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

चाउ वि धम्मगउ तं जि अभंगउ

णियसत्तिए भत्तिए जणहु ।

पत्तहं सुपवित्तहं तव-गुण-जुतहं

परगइ—संबलु तं मुणहु ॥२॥

त्याग भी धर्म का अङ्ग है। वह नियम से अभङ्ग है। तप गुण से युक्त अत्यन्त पवित्र पात्र के लिए अपनी शक्ति के अनुसार भक्ति पूर्वक उस त्याग धर्म का पालन करना चाहिए अन्य गति के लिए पाथेय के समान है।

चाए अवगुण-गणु जि उहट्टइ,

चाए णिम्मल-कित्ति पवट्टइ।

चाए वयरिय पणमइ पाए,

चाए भोगभूमि सुह जाए ॥३॥

त्याग से अवगुणो का समुदाय दूर हो जाता है, त्याग से निर्मल कीर्ति फैलती है, त्याग से वैरी पैरो मे नमस्कार करता है और त्याग से भोग भूमि के सुख मिलते है।

चाए विहिज्जइ णिच्च जि विणए,

सुहवयणइं भासेप्पिणु पणए।

अभयदाणु दिज्जइ पहिलारउ,

जिमि णासइ परभव दुहयारउ ॥४॥

विनय करके और प्रेम पूर्वक शुभ वचन बोलकर सदा नियम पूर्वक त्याग करना चाहिए। सर्व प्रथम अभय दान देना चाहिए जिससे पर भव सम्बन्धी दुःखो का नाश होता है

सत्थदाणु बीजाउ पुण किज्जइ,

णिम्मल णाणु जेण पाविज्जइ।

ओसहु विज्जइ रोय-विणासणु,

कह वि ण पेच्छइ वाहि-पयासणु ॥५॥

दूसरा शास्त्र दान भी करना चाहिए , जिससे निर्मल ज्ञान की प्राप्ति होती है रोगो का नाश करने वाला औषधि दान देना चाहिए, जिससे कहीं भी व्याधियो का प्रकाशन नहीं दिखाई देता।

आहारें धण–रिद्धि पवट्टइ,

चउविहु चाउ जि एहु पवट्टइ ।

अहवा दुट्ठ–वियप्पहं चाएं,

चाउ जि एहु मुणहु समवाएं ॥६॥

आहार दान से धन और ऋद्धियो की प्राप्ति होती है। नियम से यह चार प्रकार का त्याग धर्म है जो सनातन काल से चला आ रहा है अथवा दुष्ट विकल्पो का त्याग करने से त्याग धर्म होता है। समुच्चय रूप से इसे भी त्याग धर्म मानो।

घत्ता

दुहियहं दिज्जइ दाणु किज्जइ माणु जि गुणियणहं ।

दय भावियइ अभंग दंसणु चिंतिज्जइ मणहं ॥७॥

दुखी जनो को दान देना चाहिए, गुणी जनों का मान करना चाहिए, एक मात्र दया की भावना करनी चाहिए और मन से सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का चिन्तवन करना चाहिए।

(ॐ ह्रीं उत्तमत्यागधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

आकिंचन्यधर्मः

आकिञ्चन्यं ममत्वादि कृतदूरं सुखाकरम् ।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ।।१।।

ममत्व आदि के त्याग से उत्पन्न हुए और सुख के आकरभूत आकिञ्चन्य धर्म की मैं प्राप्ति के लिए भक्ति पूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हूँ।
(ॐ ह्रीं परब्रह्मणे उत्तमाकिंचन्यधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

आकिंचणु भावहु अप्पउ झावहु,
देहहु भिण्णउ णाणमउ ।
णिरुवम गय-वण्णउ,
सुह-सपण्णउ परम अतिंदिय विगयभउ ।२।

आकिञ्चन्य धर्म की भावना इस प्रकार करो कि आत्मा देह से भिन्न है, ज्ञानमय है, उपमा रहित है, वर्ण रहित है, सुख से परिपूर्ण है, परमोत्कृष्ट है, अतीन्द्रिय है और भय रहित है। इस प्रकार आत्मा का ध्यान ही आकिञ्चन्य धर्म है

आकिंचणु वउ संगह-णिवित्ति,
आकिंचणु वउ सुहझाण-सत्ति ।
आकिंचणु वउ वियलिय-ममत्ति,
आकिंचणु रयण-त्तय-पवित्ति ।।३।।

सब परिग्रह से निवृत्त होना आकिञ्चन्यव्रत है, चार प्रकार के शुभ ध्यानों को करने की शक्ति होना आकिञ्चन्यव्रत

है ममत्व से रहित होना आकिञ्चन्य व्रत है और रत्नत्रय में प्रवृत्ति होना आकिञ्चन्य व्रत है।

आकिंचणु आउंचियइ चित्तु,
पसरतउ इंदिय-वणि विचित्तु।
आकिंचणु देहहु णेह चत्तु,
आकिंचणु ज भव-सुह विरत्तु॥४॥

आकिञ्चन्य व्रत विचित्र इन्द्रिय रूपी वन मे फैलने वाले मन को आकुञ्चित करता है। देह से स्नेह का त्याग करना आकिञ्चन्य व्रत है और भवसुख से विरक्त होना भी आकिञ्चन्य व्रत है।

तिणमित्त परिग्गहु जत्थ णत्थि,
आकिंचणु सो णियमेण अत्थि।
अप्पापर जत्थ वियार-सत्ति,
पयडिज्जइ जहिं परमेट्ठि-भत्ति॥५॥
छंडिज्ज जहि संकप्प दुट्ठ,
भोयणु वछिज्जइ जहिं अणिट्ठ।
आकिंचणु धम्मु जि एम होइ,
त झाइज्जइ णिरु इत्थ लोइ॥६॥

जहाँ पर तृण मात्र भी परिग्रह नहीं होता वह नियम से आकिञ्चन्य व्रत है। जहाँ पर स्व और पर के विचार करने की शक्ति है, जहाँ पर परमेष्ठी की भक्ति प्रकट होती है, जहाँ पर दुष्ट संकल्पों का त्याग किया जाता है और जहाँ

पर रुचिकर भोजन की वाञ्छा नहीं रहती वहाँ आकिञ्चन्य धर्म होता है। मनुष्य को इस लोक मे उसका ध्यान करना चाहिए।

एहु जि पहावें लद्ध सहावें
तित्थेसर सिव-णयरि गया।
गय-काम-वियारा पुण रिसि-सारा
वंदणिज्ज ते तेण सया ॥७॥

इस आकिञ्चन्य धर्म के प्रभाव और सहायता से तीर्थंकर मोक्ष रूपी नगरी को प्राप्त हुए है। इसी के कारण काम-विकार से रहित ऋषिवर सदा वन्दनीय होते हैं।

(ॐ ह्रीं उत्तमाकिञ्चन्यधर्माङ्गायार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

ब्रम्हचर्यधर्मः

स्त्रीत्यक्तं त्रिजगत्पूज्यं ब्रह्मचर्यं गुणार्णवम्।
पूजया परया भक्त्या पूजयामि तदाप्तये ॥१॥

स्त्री का त्याग करने से जो प्राप्त होता है, तीनो लोको मे पूज्य है और गुणो का समुद्र है उस ब्रह्मचर्य व्रत की मै उसकी प्राप्ति के लिए भक्ति पूर्वक बड़ी विभूति के साथ पूजा करता हू।

(ॐ ह्री परब्रह्मणे उत्तमब्रह्मचर्यधर्माङ्गाय नमः जलाद्यर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

बंभव्वउ दुद्धरु धारिज्जइ
वरु फेडिज्जइ विसयास णिरु।

तिय-सुक्खइं रत्तउ मण-करि-
मत्त उ तं जि भव्व रक्खेहु थिरु ।।२।।

दुर्धर और उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य्य व्रत को धारण करना चाहिए और विषयाशा का त्याग कर देना चाहिए। यह जीव स्त्री सुख मे लीन मन रूपी हाथी से मदोन्मत्त हो रहा है, इसलिये हे भव्य ! स्थिर होकर उस ब्रह्मचर्य व्रत की रक्षा करो।

चित्तभूमि मयणु जि उप्पज्जइ,
तेण जि पीडिउ करइ अकज्जइ ।
तियहं सरीरइं णिंदइं सेवइ,
णिय-पर-णारि ण मूढउ वेयइ ।।३।।

कामदेव नियम से चित्त रूपी भूमि मे उत्पन्न होता है उससे पीड़ित होकर यह जीव अकार्य करता है। वह स्त्रियो के निन्द्य शरीरो का सेवन करता है और मूढ हुआ अपनी और दूसरे की स्त्री में भेद नहीं करता।

णिवडइ णिरइ महादुह भुंजइ,
जो हीणु जि बंभव्वउ भंजइ ।
इय जाणेप्पिणु मय-वय-काए,
बंभचेरु पालहु अणुराएं ।।४।।

जो हीन पुरुष ब्रह्मचर्य्य व्रत को भङ्ग करता है वह नरक मे पड़ता है और वहाँ के महान दुखो को भोगता है। यह जानकर मन, वचन और काय से अनुराग पूर्वक ब्रह्मचर्य्य व्रत का पालन करो।

तेण सहु जि लब्भइ भवपारउ,

बंभय विणु वउ तउ जि असारउ ।

बंभव्वय विणु कायकिलेसो,

विहल सयल भासियइ जिणेसो ।।५।।

ब्रह्मचर्य से जीव ससार से पार होता है। उसके बिना व्रत तप सब असार हैं। ब्रह्मचर्य के बिना जितने काय क्लेश किये जाते हैं वे सब निष्फल है ऐसा जिनेन्द्र देव ने कहा है।

बाहिर फरंसिदिय सुह रक्खउ,

परम बभु अभितरि पेक्खउ ।

एण उवाएं लब्भइ सिव-हरु,

इम रइधू बहु भणइ विणययरु ।।६।।

बाहर स्पर्शनेन्द्रिय जन्य सुख से अपने आत्मा की रक्षा करो और भीतर परम ब्रह्मचर्य को देखो। इस उपाय से मोक्ष रूपी घर की प्राप्ति होती है। इस प्रकार रइधू कवि बहुत विनय के साथ कहते हैं।

घत्ता

जिणणाह महिज्जइ मुणि

पणमिज्जइ दहलक्खणु पालियइ णिरु ।

भो खेमसींह-सुय भव्व विणय जुय

होलुव मण इह करहु थिरु ।।७।।

जिसकी जिन देव ने महिमा गायी है और मुनिजन जिसे प्रणाम करते हैं उस दश लक्षण धर्म का उत्तम प्रकार

से पालन करो। हे भव्य। क्षेमसिंह के पुत्र होलू के समान अपने मन को इसमे स्थिर करो।

(ॐ ह्रीं उत्तमब्रह्मचर्य्यधर्मांङ्गाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

समुच्चय-जयमाला

इय काऊण णिज्जरं जे हणंति भवपिंजरं ।
णीरोयं अजरामरं ते लहंति सुक्खं परं ।।१।।

इस प्रकार कर्मों की निर्जरा करके जो भव रूपी पिंजरे का नाश करते है वे रोग रहित अजर-अमर परम सुख को प्राप्त करते है।

जेण मोक्ख-फलु तं पाविज्जइ,
सो धम्मंगो एहहु किज्जइ ।
खयय खमायलु तुंगय देहउ,
मद्दउ पल्लउ अज्जउ साहउ ।।२।।
सच्च सउच्च मूल सजमु दलु,
दुविह महातव णव-कुसुमाउलु ।
चउविह चाउ पसारिय परिमलु,
पीणिय-भव्वलोय-छप्पयउलु ।।३।।
दिय-संदोह-सद्द-कयकलयलु,
सुर-णरवर-खेयर सुह सय फलु ।
हीण णाह-दोह-सम-णिग्गहु,
सुद्ध-सोम-तणुमत्तु परिग्गहु ।।४।।

बंभचेरु छायाइ सुहासिउ,
रायहंस-णियरेंहिं समासिउ ।
एहउ धम्म-रुक्खु लक्खिज्जइ,
जीवदया बहुविधि पालिज्जइ ॥५॥

झाण-ट्ठाणु भल्लारउ किज्जइ,
मिच्छामयहं पवेसु ण दिज्जइ ।
सील-सलिलधारहिं सिंचिज्जइ,
एम पयत्तें वड्ढारिज्जइ ॥६॥

जिससे उस मोक्ष फल की प्राप्ति होती है उस धर्माङ्ग का सेवन करना चाहिये। वह क्षमा रूपी पृथ्वी तल से युक्त उत्तुङ्ग देह वाला है। उसके मार्दव रूपी पल्लव और आर्जव रूपी शाखायें है। सत्य और शौच रूपी जड है। संयम रूपी पत्ते है। दो प्रकार के महातप रूपी नूतन पुष्पो से व्याप्त है। चार प्रकार का त्याग रूपी सुगन्धि युक्त परिमल फैल रहा है। प्रीणित भव्य लोक रूपी भ्रमर दल है। भव्य रूपी पक्षी-सन्दोह कल-कल शब्द कर रहे है। देव, मनुष्य और विद्याधरो के सुख रूपी सैकड़ों फल लग रहे है। जो दीन और अनाथ जीवो के दीर्घ श्रम का निग्रह करने वाले शुद्ध और सौम्य शरीर मात्र परिग्रह (आकिञ्चन्य) से युक्त है। राजहंसो के समूह के द्वारा आश्रय किया गया ब्रह्मचर्य इसकी छाया मे फल फूल रहा है। यह धर्म रूपी वृक्ष है। जीवदया के द्वारा इसका अनेक प्रकार से पालन करना चाहिए। इसे भले प्रकार का ध्यान का स्थान बनाना चाहिए और मिथ्यामतो

का अपने मे प्रवेश नहीं होने देना चाहिए। शील रूपी जल की धारा से इसका सिञ्चन करना चाहिए। इस प्रकार प्रयत्न पूर्वक इसे बढ़ाना चाहिए।

घत्ता

कोहाणलु चुक्कउ होउ गुरुक्कउ
जाइ रिसिंदहिं सिट्ठइं।
जगताइं सुहंकरु धम्म-महातरु
देइ फलाइं सुमिट्ठइं ॥७॥

क्रोधानल का त्याग कर महान बनो ऐसा ऋषिवरो ने उपदेश दिया है। शुभ करने वाला यह धर्म रूपी महा तरु संसार को मीठे फल प्रदान करता है।

(ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादिदशलक्षणधर्मेभ्योऽर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

(इत्याशीर्वादः)

रत्नत्रयपूजा

श्रीवर्द्धमानमानम्य गौतमादींश्च सद्गुरून् ।
रत्नत्रय-विधि वक्ष्ये यथाम्नायं विमुक्तये ॥१॥

श्री वर्द्धमान तीर्थंकर और गौतम आदि सद् गुरुओ को नमस्कार कर संसार से मुक्त होने के लिए आम्नाय के अनुसार रत्नत्रय पूजा को करूंगा।

परमेष्ठी परंज्योतिः परमात्मा जागद्गुरुः ।
ज्ञानमूर्तिरमूर्तोऽपि भूयान्नो भव-शान्तये ॥२॥

जो परम पद मे स्थित है, उत्कृष्ट ज्ञानी हैं, परमात्मा हूं, जगद्गुरु हैं और अमूर्त होकर भी ज्ञानमूर्ति हैं वे हमारे भव ताप को शान्त करे।

निर्विकल्पं निराबाधं शाश्वतानन्द-मन्दिरम् ।
तोष्टुवीमि चिदात्मानं स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥३॥

विकल्प रहित, बाधा रहित, शाश्वत और आनन्द के मन्दिर चैतन्य स्वरूप परमात्मा को अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए मै नमस्कार करता हूं ।

यस्य ज्ञानान्तरिक्षैकदेशे सर्वं जगत्त्रयम् ।
एकमृक्षमिवाभाति तस्मै ज्ञानात्मने नमः ॥४॥

जिसके ज्ञान रूपी आकाश में सम्पूर्ण तीनो लोक एक नक्षत्र के समान प्रतिभासित होते हैं उस ज्ञान स्वरूप परमात्मा को मैं नमस्कार करता हूं।

अनन्तानन्त–संसार-पारावारैक-तारकम् ।
परमात्मानमव्यक्तं ध्यायाम्यहमनारतम् ॥५॥

अनन्तानन्त संसार रूपी समुद्र से एक मात्र तारने वाले अव्यक्त परमात्मा का मैं सदा ध्यान करता हूँ।

अनन्यशरणीभूय तद्गुण-ग्राम–लब्धये ।
स्फुरत्समरसीभाव-मितोऽहं चिद्घनं स्तुवे ॥६॥

मैं अनन्य शरण और स्फुराय मान समरसी भाव को प्राप्त होकर उनके गुणो की प्राप्ति के लिए चैतन्य घन परमात्मा की स्तुति करता हू।

विषयेषु विषामेषु श्वभ्र–पातक–हेतुषु ।
मनः पराङ्मुखीभूय लीयतां परमात्मनि ॥७॥

विषय नरक मे पतन के कारण हैं और विष के समान हैं। उन से मन विमुख होकर परमात्मा मे लीन होवे।

यन्नाम–मन्त्र–जापेन दुःखदोऽयं भव-ज्वरः ।
सद्यः संक्षीयते तस्मै नमोऽस्तु परमात्मने ॥८॥

जिसके नाम के मन्त्र के जाप से दु:ख दायक यह ससार रूपी ज्वर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है, उस परमात्मा को मेरा नमस्कार हो।

अविद्यानादि–संभूता यस्य स्मरण–मात्रतः ।
क्षणाद् विलीयते तस्मै नमोऽस्तु परमात्मने ॥९॥

जिसके स्मरण मात्र से ही अनादिकालीन अज्ञान क्षण भर मे नष्ट हो जाता है उस परमात्मा को मेरा नमस्कार हो।

अनन्त दर्शन–ज्ञान-वीर्यानन्दैक—मूर्तये ।
सदा समयसाराय नमोऽस्तु परमात्मने ॥१०॥

अनन्त दर्शन, अनंत ज्ञान, अनन्त वीर्य और अनन्त सुख के धारी समयसार रूप परमात्मा को मै नमस्कार करता हूँ।

स्वसंवेदनमव्यक्तं यत्तत्त्वं सत्त्वशान्तिदम् ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥११॥

जो अनुभव स्वरूप है, अव्यक्त है, तत्त्व रूप है और प्राणियो को शान्ति दायक है उस निर्मल चैतन्य रूप परमात्मा को मेरा नमस्कार हो।

सनातनोऽपि यः स्वामी स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मकः ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ।१२॥

जो सनातन होकर भी स्थिति, उत्पत्ति और व्यय रूप है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्मा को मेरा नमस्कार हो।

रत्नत्रय-स्वभावोऽयं निगदन्ति महर्षयः ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ।१३।

महर्षि गण जिसे रत्नत्रय स्वभाव बतलाते हैं उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्मा को मेरा नमस्कार हो।

यः स्वानुभव-संगम्योऽप्यवाङ्-मानस-गोचरः ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१४॥

जो अपने अनुभव गम्य होने पर भी वचन और मन के अगोचर है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्मा को मेरा नमस्कार हो।

अनन्तं सर्वदा यस्य सौख्यं वाचामगोचरम् ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१५॥

जिसका अनन्त शाश्वतिक सुख वचनों के अगोचर है उस चिद्रूप विशुद्ध परमात्मा को मेरा नमस्कार हो ।

स्वात्म–स्थितोऽपि यः सर्व-गतः संगीयते बुधैः ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१६॥

अपनी आत्मा मे रहकर भी जिसे विद्वान सर्व गत कहते है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्मा को मेरा नमस्कार हो।

यस्योदये निहन्त्येनामविद्या-रजनी बलात् ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१७॥

जिसके उदय होने पर कोई भी अज्ञान रूपी रात्रि को बल पूर्वक नष्ट कर देता है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्मा को मेरा नमस्कार हो ।

सती मुक्ति-सखी विद्या यस्योन्मीलति सेवया ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिद्रूपाय परात्मने ॥१८॥

जिसकी सेवा करने से मुक्ति की सखी समीचीन विद्या प्रकट होती है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्मा को मेरा नमस्कार हो ।

स्वयमानन्द-रूपोऽयं त्रिजगत्परमेश्वरः ।
नमस्तस्मै विशुद्धाय चिदरूपाय परात्मने ॥१९॥

जो स्वयं आनन्द स्वरूप है और तीन लोक का परमात्मा है उस विशुद्ध चिद्रूप परमात्मा को मेरा नमस्कार हो ।

(इद पठित्वा साष्टाङ्गनमस्कारं कुर्यात्)

मुक्तेः प्रकाशकतया समवापि येन

लोकोत्तरोऽत्र महिमा स्व-परानवाप्य ।।

विध्वस्त-मोह-तमसे परमाय तस्मै

रत्नत्रयाय महसे सततं नमोऽस्तु ।२०।

मुक्ति का प्रकाशक होने से जिसने स्व और परका भेद विज्ञान कर इस लोक मे लोकोत्तर महिमा प्राप्त कर ली है, मोह रूपी अन्धकार को दूर करने वाले उस परम तेज रूप रत्नत्रय को मेरा निरन्तर नमस्कार हो।

सन्निश्चयश्चिदचिदादिषु दर्शनं तद्

जीवादि-तत्त्व-परमावगमः प्रबोधः ।।

पाप-क्रिया-विरमणं चरणं किलेति ।

रत्नत्रयं हृदि दधे व्यवहारतोऽहम् ।।२१।।

चेतन–अचेतन पदार्थों मे श्रद्धा करना सम्यग्दर्शन है जीवादि तत्वो का यथार्थ ज्ञान करना सम्यग्ज्ञान है और पाप क्रियाओ से निवृत्त होना सम्यक् चारित्र है ऐसे व्यवहार रत्नत्रय को मैं हृदय मे धारण करता हूं।

दर्शनमात्मविनिश्चितिरात्मपरिज्ञानमिष्यते बोधः ।

स्थितिरात्मनि चारित्र निश्चय-रत्नत्रयं वन्दे।२२।

आत्मा का निश्चय करना सम्यग्दर्शन है, आत्मा का विशेष ज्ञान सम्यग्ज्ञान है और आत्मा मे ही स्थिति करना सम्यक्चारित्र है इस निश्चय रत्नत्रयको मैं नमस्कार करता हूं।

ये याता यान्ति यास्यन्ति यमिनः पदमव्ययम् ।

समाराध्यैव ते नूनं रत्न-त्रयमखण्डितम् ।।२३।।

जो मुनि अव्यय मोक्ष पद को प्राप्त हुए, हो रहे हैं और होंगे वे सब नियम से अखण्ड रत्नत्रय का आराधन कर ही प्राप्त हुए हैं।

रत्नत्रयं तज्जननार्ति-मृत्यु-
सर्पत्रयी-दर्पहरं नमामि ।
यद्भूषणं प्राप्य भवन्ति शिष्टा
मुक्तेर्विरूपाकृतयोऽप्यभीष्टाः ॥२४॥

जन्म, पीड़ा और मरण रूपी सर्प त्रयी के दर्प को हरने वाले रत्न त्रय को मैं नमस्कार करता हूं। आभूषण स्वरूप जिसे प्राप्त कर विरूप आकृति वाले शिष्ट भी मुक्ति रूपी स्त्री के प्यारे बन जाते हैं।

(ॐ ह्रीं श्रीसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप रत्नत्रय ! अत्र अवतर अवतर संवौषट ।)

(ॐ ह्रीं श्रीसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रस्वरूप रत्नत्रय ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ. ।)

(ॐ ह्रीं श्रीसम्यग्दर्शनज्ञानचारित्र स्वरूप रत्नत्रय ! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।)

स्वर्धुनी-नीर-धाराभिः गन्ध-साराभिरादरात् ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥२५॥

गंगा के जल की सुगन्धित धाराओं से व्यवहार और निश्चय स्वरूप सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्दर्शनाय अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय त्रयोदशविधसम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।)

हरिचन्दन-निर्यासैः दिग्वासैः काश-हासिभिः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ।२६।

दिशाओं को सुगन्धित करने वाले और काश के फूल को लजाने वाले हरिचन्दन के जल की धाराओ से व्यवहार और निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की मैं पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्य चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।)

तन्दुलैः पाण्डुराखण्डैः पुञ्जितैरलि-गुञ्जितैः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ।।२७।।

गूँजते हुए भौरो से युक्त, स्वच्छ और अखण्ड पुञ्ज-रूप चावलो से व्यवहार तथा निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की मैं पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ।)

प्रसूनैः सौरभानूनैरनूनैर्गुण-दुर्लभैः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ।।२८।।

परिपूर्ण सुगन्धि और अन्यासाधारण दुर्लभ गुणो से युक्त पुष्पो से व्यवहार और निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की मैं पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।)

सन्नाज्यैस्तर्जितानाज्यैर्निकायैर्गुण-सम्पदाम् ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ।२९।

इतर नैवेद्यो को तिरस्कृत करने वाले ऐसे घी से बने हुए अनेक गुणयुक्त नैवेद्यो से व्यवहार तथा निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की मैं पूजा करता हूँ ।
(ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

प्रदीपैर्दीपिताशेष-दिक्चक्रैर्नयनप्रियैः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥३०॥

सभी दिशाओ को प्रकाशित करने वाले और नेत्रो को प्रिय लगने वाले दीपको से व्यवहार तथा निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की मै पूजा करता हूँ।
(ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो दीप निर्वपामीति स्वाहा ।)

धूपनैर्धूप-धूमाभ्रं विभ्राणैर्घ्राण-तर्पणैः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥३१॥

धूप के धुएँ के पटल रूप और नासिका को तृप्त करने वाली जलती हुई धूप से व्यवहार तथा निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की मैं पूजा करता हू ।
(ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा)

फलभेदै रस-स्पर्श-गन्ध-वर्णानुशोभितैः ।
द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ॥३२॥

उत्तम रस, स्पर्श, गन्ध और रूप वाले अनेक फलो से निश्चय तथा व्यवहार सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्

चारित्र की मैं पूजा करता हूं ।)

(ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा)

अर्घ्येणार्घ्याम्बु-दूर्वादि-द्रव्य-सर्वस्व-हारिणा ।

द्वेधा सद्दर्शन-ज्ञान-चारित्राण्यर्चयाम्यहम् ।३३।

योग्य जल और दूर्वा आदि मनोहारी सभी द्रव्यों के अर्घ्य व्यवहार तथा निश्चय सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की मैं पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

इत्यर्चयन्ति ये भेदाभेद-रत्न-त्रयं सदा ।

ते शिवाशा-धरा-भक्त्या श्रियं गच्छन्ति शाश्वतीम्

इस प्रकार जो भक्ति पूर्वक भेद और अभेद रूप रत्न-त्रय की सदा पूजा करते है, मोक्ष की आशा रखने वाले वे अविनश्वर लक्ष्मी (मोक्ष) प्राप्त करते हैं ।

(ॐ ह्रीं सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रेभ्य. पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

सम्यग्दर्शन

श्रद्धानं सप्त-तत्त्वानां स्थित्युत्पत्ति-व्ययात्मनाम् ।

व्यवहारेण सम्यक्त्वमामनन्ति मनीषिणः ॥३५॥

स्थिति, उत्पत्ति और व्यय स्वरूप सात तत्त्वों के श्रद्धान को विद्वान पुरुष व्यवहार सम्यक्त्व कहते हैं ।

सान्द्रानन्दमये शुद्धे चिद्रूपे परमात्मनि ।

निश्चयो निश्चयात् सम्यक् सम्यक्त्वं मुक्तयेऽस्तु नः

प्रगाढ़ आनन्दमय और शुद्ध चैतन्य स्वरूप परमात्मा में समीचीन श्रद्धा होना निश्चय सम्यग्दर्शन है। वह हमे मुक्ति के लिए हो।

सति यस्मिन् तपस्तप्तमपि स्वल्पं बहु-प्रदम् ।
नमस्तस्मै गरिष्ठाय सम्यक्त्वायामलत्विषे ।३७।

जिसके होने पर अल्प मात्रा मे तपा गया तपश्चरण भी बहुत फल को देने वाला होता है उस महान और निर्मल सम्यग्दर्शन के लिए नमस्कार हो।

अम्बुनेव कृषिर्येन विना दानादि-सत्क्रिया ।
सर्वापि विफला तस्मात् सम्यक्त्वं शरणं मम।३८।

जैसे जल के बिना खेती व्यर्थ है वैसे ही सम्यक्त्व के बिना सब दानादि शुभ क्रियाये भी व्यर्थ हैं, इसलिए मुझे सम्यक्त्व की ही शरण है।

धर्मेणैवार्थ–कामौ द्वौ येनात्र भवतः सताम् ।
बोध-वृत्ते ततस्तत्प्राक् सम्यक्त्वं शरणं मम ॥३९॥

जिस धर्म के प्रभाव से इस संसार मे सज्जन पुरुषो को अर्थ और काम की प्राप्ति होती है और जिससे बोध और चारित्र की प्राप्ति होती है, अतः इनकी प्राप्ति के पूर्व मुझे सम्यक्त्व ही शरण है।

यत्सिद्धाः प्राणिनः पूर्वमग्रे सेत्स्यन्ति ये पुनः ।
ये च सिद्धयन्ति तन्मन्ये सर्वं सम्यक्त्व-वैभवम्।४०।

जो प्राणी पहले सिद्ध हो चुके हैं, जो आगे सिद्ध होगे और जो सिद्ध हो रहे है, इस सब को मैं सम्यक्त्व की ही महिमा मानता हूं।

शेषाहेरिव जिह्वानां सहस्र -द्वितयं मुखे ।
यस्य सोऽपि न सम्यक्त्व-माहात्म्यं गदितुं क्षमः ।

शेषनाग के समान जिसके मुख मे दुगुणी दो हजार जिह्वाये हो वह भी सम्यक्त्व की महिमा का व्याख्यान करने मे समर्थ नहीं है।

जन्मिनां यस्य सामर्थ्यादुपलब्धिश्चिदात्मनः ।
नमस्तस्मै गरिष्ठाय सम्यक्त्वाय महात्मने ।।४२।।

जिसकी सामर्थ्य से प्राणियो को शुद्ध चैतन्य स्वरूप की उपलब्धि होती है उस गरिमा युक्त महात्मा स्वरूप सम्यग्दर्शन को मेरा नमस्कार स्वीकार हो।

(पुष्पाजलिं क्षिपामि)

शुद्ध-बुद्ध-स्वचिद्रूपादन्यस्याभिमुखी रुचिः ।
व्यवहारेण सम्यक्त्व निश्चयेन तथात्मनः ।।४३।।

शुद्ध, बुद्ध और चैतन्य रूप अपने स्वरूप से भिन्न अन्य पदार्थों के अभिमुख श्रद्धान को व्यवहार-सम्यक्त्व कहते है और आत्मा के श्रद्धान को निश्चय सम्यक्त्व कहते हैं।

प्रतिदिनं खलु यत्र वितन्वते
कृत-मुदा वसति शिव-सम्पदा ।
समयसार-रसे मम मानसे
तदवतारमुपैतु दृगम्बुजम् ।।४४।।

मोक्ष सम्पदा जिसमें प्रतिदिन प्रमोद के साथ विकसित होती है, समयसार के रस से परिपूर्ण वह सम्यग्दर्शन रूपी

कमल मेरे मन रूपी मानस सरोवर में अवतरित होओ।
(ॐ ह्रा ह्रीं ह्रौं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्दर्शन ! अत्र अवतर अवतर संवौषट ।)

भव- प्रभव-दुर्वार—दुःखाग्नि-शमनाम्बुदम् ।
अष्टाङ्गं स्थापयाम्यत्र दर्शनं तद्विशुद्धये ॥४५॥

ससार जन्य दुर्निवार दुःख रूपी अग्नि के शमन करने के लिए जो जल के समान हैं उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन की उसकी विशुद्धि के लिए मैं स्थापना करता हूं ।
(ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौ ह्र' अष्टाङ्गसम्यग्दर्शन ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ.)

भव—विपत्तिमतीत्य शिव—
श्रियामधिपतिर्यदनुग्रहतो नरः ।
दलित-निर्दलनं मम दर्शनं
तदिह सन्निहितं भवतूत्तमम् ॥४६॥

जिसके प्रभाव से मनुष्य संसार जन्य विपत्ति को दूर कर मोक्ष रूपी लक्ष्मी का अधिपति बनता है वह पापो को नष्ट करने वाला उत्तम सम्यग्दर्शन मेरे निकटवर्ती होओ।
(ॐ ह्रां ह्रीं ह्रौं ह्र. अष्टाङ्गसम्यग्दर्शन ! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट ।

स्वात्मोपलब्धिर्यदनुग्रहेण
भव्यात्मनां स्यादचिरादभीष्टा ।
साष्टांङ्गमर्चामि सुदर्शनं तत्
सुरेन्द्र-सिन्धोरमृतेन रत्नम् ॥४७॥

जिसके प्रभाव से भव्यात्माओं को अपने अभीष्ट स्वात्मोपलब्धि की शीघ्र प्राप्ति होती है उस अष्टांग सम्यक्त्व रत्न की गंगा के जल से मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।)

भव्यात्मनां द्वादशसु प्रमाणं
मिथ्यानिवासेषु यकेन रुद्धम्।
साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद्
रत्नं मनो-नन्दन-चान्दनेन ॥४८॥

जिसने भव्य जीवों को बारह मिथ्या मतों को प्रमाण मानने से रोका है उस अष्टाङ्ग सम्यक्त्व रत्न की मन को आनन्द देने वाले चन्दन से मैं पूजा करता हूं।)

(ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा)

स्वभ्रेषु दुःखावनिषु प्रपातः
स्वप्नेऽपि यस्मिन् सति नाङ्गभाजाम्।
साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद्
रत्नं विशुद्धं ललिताक्षतौघैः ॥४९॥

जिसके होने पर स्वप्न में भी दुःखों के स्थान रूप नरकों में प्राणियों का पतन नहीं होता उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन की मनोहर अक्षतों से मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।)

ज्ञान-श्रियो मूलमपास्त–दोषं

चारित्र-वल्ली-वन-जीवनं यत् ।

साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद्

रत्नं सरोज–प्रमुखैः प्रसूनैः ॥५०॥

जो ज्ञान रूपी लक्ष्मी का मूल है, निर्दोष है और जो चारित्र रूपी लता के वन के लिए जल के समान है उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन रूपी रत्न की कमल–प्रमुख फूलों से मैं पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।)

श्रद्धान-रूपं किल चेतनादि–

तत्त्वोत्तमानां निगृहीत–मोहम् ।

साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद्

रत्नं रसान्यैश्चरुभिर्विमुक्त्यै ॥५१॥

जो जीवादि सात तत्त्वों के श्रद्धान रूप है और मोह का नाश करने वाला है उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन की स्वादिष्ट व्यं–जनों से मुक्ति प्राप्ति के लिए मैं पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा ।)

निसर्गतो वाधिगमात्प्रजानामुत्पद्यते

यत्किल काल–लब्ध्या ।

साष्टाङ्गमर्चामि सुदर्शनं तद्

रत्नं मुदा रत्न-भव-प्रदीपैः ॥५२॥

जो काल लब्धि के अनुसार प्राणियों के स्वभावतः या परोपदेश से उत्पन्न होता है उस अष्टाङ्ग सम्यक्त्व रत्न की प्रसन्नता पूर्वक रत्नमय दीपको से मै पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।)

संवेग-मुख्यैः परमैः गुणौघैरलंकृतं

ध्वस्त—समस्त—पापम् ।

साष्टांगमर्चामि सुदर्शनं तद्

रूपैः सुगन्धीकृत-दिग्विभागैः ।५३।

सवेग प्रमुख गुणो से जो सुशोभित है और समस्त पापो से रहित है उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन की समस्त दिशाओ को सुगन्धित करने वाली धूप से मै पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय दुष्टाष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।)

मुख्यं फल यस्य विमुक्ति-

सौख्यममुख्यमत्यद्भुत-राज-लक्ष्मीः ।

साष्टागमर्चामि सुदर्शनं तद्

सन्मातुलिंग-प्रमुखैः फलौघैः ।।५४।।

जिसका मुख्य फल मोक्ष सुख का मिलना है और गौण फल चक्रवर्ती आदि अद्भुत राज-विभूति का प्राप्त होना है उस अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन की बीजपूर प्रमुख फलो से मैं पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।)

दुष्कर्म-दाव-हुतभुक्-शमने पयोदं

संसार-कारण-निवारण-बद्ध-कक्षम् ।

निःश्रेयसाद्‌भुत-सुखाय निरस्त-दोषं

सद्दर्शनं सुकुसुमाञ्जलिमातनोमि ॥५५॥

जो पाप रुपी दावानल को शमन करने के लिए मेघ के समान है और जो संसार के कारणो को दूर करने मे सदा तत्पर है, अद्‌भुत मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए दोष रहित उस सम्यग्दर्शन को मैं जल, चन्दन, फल और फूल आदि की अञ्जलि अर्पित करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व-पामीति स्वाहा ।)

अष्टांग-पूजा

येनान्वितो भव्य जनो जिनोक्ते

न संशयी जातु पदार्थ-जाते ।

तद्दर्शनागं शिव-सौख्य बीजं

निःशङ्कितत्वं हृदये ममस्ताम् ॥५६॥

जिसके होने पर प्राणियों को जिन-प्रतिपादित तत्त्वो में कभी संशय नहीं होता वह मोक्ष सुख का कारण सम्य-क्त्व का निःशंकित मेरे हृदय मे वास करो।

(ॐ ह्रीं निःशङ्किताङ्गाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

चक्रश्रिया शक्र-पद-श्रिया

च हर्षादहंपूर्वकया शरीरी ।

यस्य प्रभावाद् ध्रियते तदुच्चैर्नि:

कांक्षितत्वं हृदये ममास्ताम् ।।५७।।

जिसके प्रभाव से चक्रवर्ती और इन्द्र की लक्ष्मी पहले मैं-पहले मैं' इस भाव से प्राणियो के पास आती है वह सम्यग्दर्शन का निष्कांक्षित अंग मेरे हृदय में वास करो।

(ॐ ह्रीं नि:कांक्षिताङ्गाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

उदेति विद्या-विलसद्-विवेकात्

प्रस्फूर्यदभ्यास-वशान्नरेषु ।

तदुत्तमं निर्विचिकित्सितत्वं

सुदर्शनाग हृदये ममास्ताम् ।।५।।

स्फुरायमान अभ्यास वश विद्या विलस्स जन्य विवेक से मनुष्यो मे जो उदित होता है, सम्यग्दर्शन का वह श्रेष्ठ निर्विचिकित्सित अंग मेरे हृदय मे निवास करो।

(ॐ ह्रीं निर्विचिकित्सिताङ्गाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा)

अनारतं यद्वशगोऽयमात्मा

न मोहमन्वेति परात्म-तत्त्वे ।

अमूढदृष्टित्वमकल्पनं तत्

सुदर्शनाङ्गं हृदये ममस्ताम् ।।५६।।

जिसका वशवर्ती होकर यह आत्मा पर पदार्थों में मोह नहीं करता वह सम्यग्दर्शन का निर्दोष अमूढ दृष्टि अङ्ग मेरे हृदय मे वास करो।

(ॐ ह्रीं अमूढताङ्गाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

न दुःखलेशोऽपि सतीह यस्मिन

शरीरिणां ध्वान्तमिव द्युरत्ने ।

निगूहनाख्यं सुख कारणं तत्

सुदर्शनाङ्गं हृदये ममास्ताम् ।६०।

जिस प्रकार सूर्य के उदित होने पर अन्धकार नहीं रहता उसी प्रकार जिसके होने पर प्राणियो को थोडा भी दुःख नही होता वह उपगूहन अङ्ग मेरे हृदय मे वास करो ।
(ॐ ह्रीं उपगूहनाङ्गाय नम अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

न्यायात् पथः संचलतः परस्य

यत्प्रत्यवस्थापनमात्मनो वा ।

तत्सुस्थितीसंस्करणं वरेण्यं

सद्दर्शनागं हृदये ममास्ताम् ।।६१।।

न्याय मार्ग से डिगते हुए किसी अन्य प्राणी को या स्वयं को पुन उस पर लगा देना यह सम्यग्दर्शन का श्रेष्ठ स्थिति-करण अङ्ग है। वह सदा मेरे हृदय मे वास करे।
(ॐ ह्रीं स्थितिकरणाङ्गाय नम. अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

सत्सत्त्व-सन्तान-विचित्रमेतत्

त्रैलोक्यमप्याशु वशीकरोति ।

वात्सल्यमात्मोदय-कारणं

तत्सुदर्शनागं हृदये ममास्ताम् ।।६२।।

जो तीन लोक के सभी प्राणियो को शीघ्र ही अपने वश मे कर लेता है वह आत्मा के अभ्युदय का कारण

सम्यक्त्व का वात्सल्य अंग मेरे हृदय मे वास करो।

(ॐ ह्रीं वात्सल्याङ्गाय नम अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

यशः–शशाङ्कोज्ज्वलमत्र येन
नृणाममुत्र त्रिदिवे निवासः।
प्रभावनाख्यं प्रथित-प्रभावं
सुदर्शनागं हृदये ममास्ताम ॥६३॥

जिससे इस लोक मे चन्द्रमा के समान उज्जवल यश फैलता है और परलोक मे स्वर्ग मे निवास होता है वह अत्यधिक प्रभावशाली सम्यग्दर्शन का प्रभावनाङ्ग मेरे हृदय में वास करे।

(ॐ ह्रीं प्रभावनाङ्गाय नम अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

अष्टकम्

रचयाम्यर्चनं भक्त्या वारिभिश्चत्त-हारिभिः।
नि:शङ्कितादिकांगानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६४॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए चित्त को हरण करने वाले जल से भक्ति पूर्वक नि:शङ्कित आदि अंगो की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं नि:शङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।)

रचयाम्यर्चनं भक्त्या चन्दनैश्चित्त-नन्दनैः।
निःशङ्कितादिकांगानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६५॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए मनोहर शीतल चन्दन से नि:शङ्कित आदि अंगो की मैं पूजा करता हूं।

रचयाम्यर्चनं भक्त्या तण्डुलैरतिनिर्मलैः ।
निःशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६६॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए स्वच्छ अक्षतों से नि.शङ्कित आदि अंगों की मैं पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं नि:शङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यः अक्षत निर्वपामीति स्वाहा ।)

रचयाम्यर्चनं भक्त्या कुसुमैर्विगतोपमैः ।
निःशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६७॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए अनुपम फूलो से नि:शङ्कित आदि आठ अंगो की मैं पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं नि.शङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यः पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।)

रचयाम्यर्चनं भक्त्या पक्वान्नैः सरसैर्नवैः ।
निःशङ्कितादिकाङ्गानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६८॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए सरस और ताजे पक्वान्नो से निःशङ्कितादि आठ अङ्गो की मैं पूजा करता हूं ।

(ॐ ह्रीं निःशङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यः नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

रचयाम्यर्चनं भक्त्या दीप-व्रातैः प्रभार्चितैः ।
निःशङ्कितादिकांगानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥६९॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए प्रभा से प्रकाशमान दीप–समूहो से निःशङ्कितादि आठ अंङ्गो की मैं पूजा करता हू ।

(ॐ ह्रीं निःशङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।)

रचयाम्यर्चनं भक्त्या धूप–धूम्रैर्मनोरमैः ।
निःशङ्कितादिकांगानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ॥७०॥

अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए धूप के उठते हुए सुन्दर धुएँ से निःशङ्कितादि आठ अङ्गों की मै पूजा करता हूं।
(ॐ ह्रीं निःशङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा ।)

रचयाम्यर्चनं भक्त्या फलैः पूजादि-सत्फलैः ।
निःशङ्कितादिकांगानां स्व-स्वरूपोपलब्धये ।।७१।।

अपने स्वरूप की प्राप्ति के लिए सुपारी आदि श्रेष्ठ फलो से नि.शङ्कितादि आठ अङ्गों की मै पूजा करता हूँ।
(ॐ ह्रीं नि'शङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्य. फल निर्वपामीति स्वाहा ।)

आर्या

जल–चन्दन–विशदाक्षत-सुशोभिना
मोक्ष-सौख्य–संलब्धये ।
कुसुमाञ्जलिना नित्यं
दृष्टांगन्यादरात् प्रयजे ।।७२।।

मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए जल, चन्दन और सुन्दर अक्षतादि से सुशोभित पुष्पों की अजलि से सम्यग्दर्शन के आठ अ ।ो की मैं सदा भक्ति पूर्वक पूजा करता हूँ।
(ॐ ह्रीं नि.शङ्किताद्यष्टाङ्गेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

जयमाला

घत्ता

जय जय सद्दर्शन भव-भय-निरसन
मोह–महातम वारण ।
उपशम-कमल-दिवाकर-सकल-गुणाकर
परम-मुक्ति-सुख-कारण ।।७३।।

संसार का भय दूर करने वाले, मोह रूपी महान अन्धकार को नष्ट करने वाले, समता रूपी कमल को खिलाने के लिए सूर्य के समान, सम्पूर्ण गुणो के निधि और उत्कृष्ट मुक्ति सुख के कारण हे सम्यग्दर्शन, तुम जयवन्त होओ।

जय दर्शन भुवन-सरोज-सूर

दूरीकृत-दुर्नय-तिमिर-पूर ।

जय विषम-मदाष्टक-विटपि-नाग

जय वाञ्छितार्थ-वितरण-सुराग ॥७४॥

मिथ्या रूपी अन्धकार के पूर को नष्ट करने वाले त्रैलोक्य के भव्य कमलो को सूर्य के समान हे सम्यग्दर्शन तुम जयवन्त होओ। विषम आठ मद रूपी वृक्षो के लिए हाथी के समान तथा इच्छित पदार्थ देने के लिए कल्पवृक्ष के समान हे सम्यग्दर्शन तुम जयवन्त होओ।

अष्टांग-समन्वित दुरित-हरण

भव-भीत-यतीश-समूह-शरण ।

दुर्वार-नरक-भूरुह-कुठार जय

मुक्ति-कामिनी-कण्ठ-हार ॥७५॥

आठ अंग सहित, पाप निवारक, संसार से भयभीत साधुओ के लिए शरणभूत, दुर्वार नरक रूपी वृक्षो के लिए कुठार के समान और मुक्ति रूपी स्त्री के कंठ के हार के समान हे सम्यग्दर्शन तुम जयवत होओ।

उद्भासित-बहु-मिथ्या-निवास

जिन-गदित-सप्त-तत्त्वावभास ।

सेवा—भर—निर्भर-सवदनीप

निर्वाण-मार्ग-भासन-सुदीप ॥७६॥

मिथ्यात्व के बहुविध आयतनों को उद्भासित करने वाले, जिनेन्द्र-देव द्वारा प्रतिपादित सात तत्त्वो का अवभास करने वाले, अपनी सेवा करने वाले को राजा के समान पुरुष्कार देने वाले और मोक्ष मार्ग दिखाने के लिए दीपक के समान हे सम्यग्दर्शन, तुम जयवन्त होओ।

जय दुष्ट-कर्म—कानन—हुताश

सछिन्न-मदोद्धत—मोह—पाश ।

आनन्द—सान्द्र—परमात्मरूप

उद्धारित—घन-जननान्धकूप ॥७७॥

दुष्ट कर्म रूपी वनों के लिए अग्नि के समान, बलवान मोह रूपी जाल को नष्ट करने वाले आनन्द से परिपूर्ण परमात्म स्वरूप तथा प्रगाढ संसार रूपी अन्धकूप से उद्धार करने वाले हे सम्यग्दर्शन, तुम जयवत होओ ।

जय-राग-भुजंग-मद-दमन-मन्त्र

मुनि-गण-भूषण शिव सौख्य—सत्र ।

विद्वेष-सिन्धु-वडवा-निवास

निःशेष—लोक—सफली—कृताश ॥७८॥

राग रूपी सर्प के मद को दमन करने के लिए मन्त्र के समान, मुनियो के भूषण, मोक्ष सुख देने वाले, द्वेष रूपी समुद्र के लिए बड़वानल के समान और समस्त लोक की आशा को सफल करने वाले हे सम्यग्दर्शन, तुम जयवन्त होओ।

चिन्तामणि—सन्निभ—लोक—शरण

वारि—दुर्गति—कर पाप हरण ।

जय बिमल—बोध—सम्भव-निमित्त

आनन्दित-निखिल-मुमुक्षु-चित्त ॥७६॥

चिन्तामणि के समान सबको शरण देने वाले, दुर्गति का वारण करने वाले, पाप का हरण करने वाले, सम्यग्ज्ञान की उत्पत्ति के कारण तथा मोक्ष के इच्छुक प्राणियों के चित्त को आनन्दित करने वाले, हे सम्यग्दर्शन तुम जयवन्त होओ।

घत्ता

इति दर्शन—संस्तुतिमतिशय-चित्त-

मतिरिह रचयति बहु—भक्त्या ।

स स्याऽसमद्युतिरखिल-धरापतिरात्म-

हस्त—गत—कृत—मुक्तिः ॥८०॥

इस प्रकार अतिशय विवेकवान् जो भक्ति पूर्वक सम्यग-दर्शन की स्तुति करता है वह महान तेजस्वी और अखिल धरा का अधिपति होकर अन्त में मुक्ति को, अपने हाथ मे कर लेता है।

यत्कस्मादपि नो बिभेति न

किमप्य.शंसति क्वाप्युप-

क्लेशं नाश्रयते न मुह्यति

निजाः पुष्णाति शक्तीः सदा ।

मार्गान्न च्यवतेऽञ्जसा

शिव-पथं स्वात्मानमालोकते

माहात्म्यं स्वमभिव्यनक्ति च
तदा साष्टांग सद्दर्शनम् ॥८१॥

जो किसी से डरता नहीं है, कुछ चाह नहीं करता है, किसी पर क्रोध नहीं करता और न किसी से मोह करता है। केवल निरन्तर अपनी आत्म शक्तियो को पुष्ट करता है। कभी मार्ग से च्युत नहीं होता, मात्र मोक्ष मार्ग स्वरूप अपनी आत्मा को देखता है और अपने माहात्म्य को प्रकाश मे लाता है उसके उस समय अष्टाङ्ग सम्यग्दर्शन होता है।

शङ्कादृष्टि—विमोह—कांक्षणविधि
व्यावृत्ति—सन्नद्धतां
वात्सल्यं विचिकित्सितादुपरतिं
धर्मोपबृंह—क्रियाम् ।
शक्त्या शासन—दीपनं हित-
पथाद् भ्रष्टस्य संस्थापनं
वन्दे दर्शन—गोचरं सुचरितं
मूर्ध्ना नमन्नादरात् ॥८२॥

शङ्का रूप दृष्टि, मूढ दृष्टि और कांक्षण विधि की व्यावृत्ति में तत्परता, वात्सल्य, निर्विचिकित्सता, धर्म की वृद्धि करना, शक्ति पूर्वक जिन शासन की प्रभावना करना और हित रूपी मार्ग से च्युत हुए प्राणियो को पुनः उसमें स्थापित करना ये सम्यग्दर्शन के विषयभूत आठ अङ्ग हैं। इन्हें मैं मस्तक झुकाकर नमस्कार करता हूं।

(ॐ ह्रीं अष्टाङ्गसम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

यो रागादि—रिपून्निरस्य
रभसा निर्दोषभावं गतः
संवेगच्छलमास्थितो विकचयन्
विष्वक् कृपाम्भोजिनीम् ।
व्यक्तास्तिक्य—पथस्त्रिलोक—
महितः पन्थाः शिवश्रीजुषा—
माराद्धुं प्रणतीक्षितैः स
भवतः सम्यक्त्वसूर्योऽवतात् ।।८३।।

जो रागादि शत्रुओ को शीघ्रता से दूर कर निर्दोष भाव को प्राप्त हुआ है, जो सवेग भाव से युक्त है, जिसने सब ओर कृपा रूपी कमलिनी को विकसित किया है, जो अस्तिक्य मार्ग को व्यक्त करने मे समर्थ है, तीन लोक के प्राणी जिसकी पूजा करते हैं और मोक्ष लक्ष्मी का प्रेम पूर्वक सेवन करने वालो के लिए जो मार्ग रूप है, आपका वह सम्यक्त्व रूपी सूर्य की रक्षा करे।

(इत्याशीर्वादः)

अतुल-सुख-निधानं सर्व-कल्याण-बीजं
जनन-जलधि-पोतं भव्य-सत्त्वैक-पात्रम् ।
दुरित-तरु-कुटारं पुण्य-तीर्थ-प्रधानं
पिबतु जित-विपक्षं दर्शनाख्यं सुधाम्बु ।८४।

अनुपम सुख के खजाने, सम्पूर्ण सुखो के बीज, संसार समुद्र के लिए जहाज के समान, मात्र भव्य जीवो के आश्रय

से होने वाला पाप रूपी वृक्ष के लिए कुठार के समान, पुण्य तीर्थों मे प्रधान और विपक्ष को जीतने में समर्थ सम्यक्त्व रूपी अमृत का सब लोग पालन करे।

(इत्याशीर्वादः)

सम्यग्ज्ञान

द्रव्याणि यदशेषाणि सपर्यायानि सर्वतः ।
तद्गुणानपि जानाति तज्ज्ञानं केवलं स्तुवे ॥१॥

जो सम्पूर्ण द्रव्यो को उनकी अनन्तानन्त पर्यायो के साथ जानता हे और उनके गुणो को भी जानता है उस केवल ज्ञान की मैं स्तुति करता हूँ।

क्षयान्मोहस्य यज्ज्ञान-दर्शनावरणस्य च ।
उत्पद्यतेऽन्तरायस्य तदहं ज्ञानमाश्रये ॥२॥

मोक्ष के क्षय से तथा ज्ञानावरण, दर्शनावरण और अंतराय के क्षय से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसकी मैं शरण लेता हू।

तज्ज्ञानं यन्नुदत्याशु मोह-संशय-विभ्रमान् ।
नक्तं नक्तंचराख्यानि रवि-बिम्बमिवोद्गतम् ॥३॥

वह ज्ञान मोह, संशय और विभ्रम को इस प्रकार नष्ट कर देता है जैसे उदय को प्राप्त हुआ सूर्य रात और रात मे विचरने वाले जीवों को भगा देता है।

जगत्त्रय-गुरोः सम्यग् यद्रूपं परमात्मनः ।
स्तोतव्यं तत्र कस्येह सर्वाभ्युदय-साधकम् ॥४॥

तीन लोक के नाथ परमात्मा का जो स्वरूप है, सब

प्रकार के अभ्युदय का साधक वह ज्ञान भला किसके द्वारा स्तुति करने योग्य नहीं है।

सम्यक्त्वस्यावलम्बेन स्वयमुत्पद्य यत्क्रमात् ।
उत्पादयति चारित्रं तदहं ज्ञानमाश्रये ॥५॥

सम्यक्त्व के आलम्बन से स्वयं उत्पन्न होकर जो क्रमसे चारित्र को पैदा करता है, उस ज्ञान की मैं शरण लेता हूँ।

न ज्ञानं लोचनं यस्य विश्व-तत्त्वावलोकने ।
सुलोचानोऽपि सोऽवश्यं नरो विगत-लोचनः ॥६॥

संसार के सम्पूर्ण तत्त्वो को देखने मे समर्थ जिसका ज्ञान रूपी नेत्र नहीं है वह सुलोचन होकर भी नियम से अन्धा है।

तपांसि क्रियमाणानि बहून्यपि न मुक्तये ।
बिना ज्ञानेन तस्मात्तत् केवलं मुक्ति-साधनं ॥७॥

ज्ञान के बिना किये गये बहुत तपश्चरण भी मुक्ति के कारण नहीं होते, अतएव केवल सम्यग्ज्ञान ही मोक्ष का कारण है।

अमेयमत्र माहात्म्यं यद्यमुत्र न मुक्तिजम् ।
सुखं वाच्छथ तज्ज्ञानमुपाध्वं शुद्धमादरात् ॥८॥

यदि सुख चाहते हो तो इस लोक मे अपार महिमा वाले और परलोक मे मुक्ति देने वाले केवल ज्ञान की उपासना करो।

(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

निर्विकल्प-स्वसंवित्तिरनर्पित—परग्रहम् ।
सज्ज्ञानं निश्चयादुक्तं व्यवहारेण यत्परम् ॥१॥

जिसमें पदार्थों के ग्रहण की मुख्यता नहीं है ऐसा निर्विकल्पक सम्यग्ज्ञान निश्चय सम्यग्ज्ञान कहलाता है और जो इससे भिन्न है वह व्यवहार सम्यग्ज्ञान कहलाता है।

परमात्मापि येनोच्चैर्दीप्यते त्रिजगद् गुरुः ।
अभ्युपैतु तु तज्ज्ञानं भव्यं लोकैक-लोचनम् ॥२॥

जिस सम्यग्ज्ञान से तीन लोक के गुरु परमात्मा भी पूर्णतया प्रकाशमान होते हैं, प्राणियों के लोचन रूप वह भव्य ज्ञान हमे प्राप्त हो।

(ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्ज्ञान अत्र अवतर अवतर संवौषट्।)

शुक्ल-ध्यानेन यस्याप्तिः परमानन्द-शालिनी ।
स्थापयामीह तज्ज्ञानं कर्म-मर्म-निषूदनम् ॥३॥

परम आनन्द से विभूषित जिसकी प्राप्ति शुक्ल ध्यान से होती है, कर्मों के मर्म का नाश करने वाले उस सम्यग्ज्ञान की मैं स्थापना करता हू।

(ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रः अष्टाङ्गसम्यग्ज्ञान अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।)

त्रैकालिकादर्शमिवातिशुद्धे
यस्मिन् समं सर्व-पदार्थ-माला ।
परिस्फुरत्यद्भुतवैभवं तत्
ज्ञानं परं सन्निहितं ममास्तु ॥४॥

अत्यन्त शुद्ध त्रैकालिक दर्पण के समान जिसमें सम्पूर्ण पदार्थ एक साथ झलकते हैं वह अद्‌भुत वैभव वाला सम्यग्ज्ञान मेरे निकटवर्ती होओ !
(ॐ ह्रां ह्रीं ह्रुं ह्र. अष्टाङ्गसम्यग्ज्ञान अत्र मम सन्निहित भव भव वषट् ।)

नेत्र तृतीयमखिलार्थ-विलोकनेऽस्मिं-
ल्लोके यदस्य जगतो विमलं स्वभावात् ।
आनन्द–सान्द्र–परमात्म-पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान–रत्नमसमं पयसा यजामि ।।५।।

इस लोक के सम्पूर्ण पदार्थों को देखने मे जो स्वच्छ तीसरे नेत्र के समान है और जो स्वभाव से निर्मल है उस ज्ञान की अनन्त सुख रूप परमात्म–पद की प्राप्ति के लिए मैं जल से पूजा करता हूं ।
(ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।)

यल्लब्धयै विधिवदक्षगण नियम्य
कुर्वन्त्यनेकविधमत्र तपो मुनीन्द्राः ।
आनन्द–सान्द्र-परमात्म–पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान–रत्नमसमं घुसृणैर्महामि ।।६।।

मुनिगण जिस ज्ञान की प्राप्ति के लिए विधि पूर्वक इन्द्रियों का नियमन करके अनेक प्रकार का तपश्चरण करते है उस अनुपम सम्यग्ज्ञान रूपी रत्न की अनन्त सुख स्वरूप परमात्म पद की प्राप्ति के लिए मैं चन्दन से पूजा करता हूँ ।

(ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।)

चैतन्य-चिह्नमचलं किल जीवमस्माद्

देहाद्विभिन्नमिह विन्दति येन योगी ।

आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं

तज्ज्ञानरत्नमसमं सदकैर्महामि ।७।

योगी पुरुष जिस ज्ञान से चैतन्य स्वरूप जीव को देह से भिन्न अनुभव करते हैं उस अनुपम ज्ञान रत्न की अनन्त सुख रूप परमात्म पद की प्राप्ति के लिए मैं अक्षतो से पूजा करता हू ।

(ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षत निर्वपामीति स्वाहा ।)

तीर्थङ्करोरु-पदवी न दवीयसी स्याद्-

आराधितेन भुवि येन शरीरभाजाम् ।

आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं

तज्ज्ञान-रत्नमसमं कुसुमैर्महामि ॥८॥

लोक मे जिसकी आराधना करने से महान तीर्थङ्कर पद का प्राप्त होना कठिन नहीं होता उस अनुपम सम्यग्ज्ञान रत्न की अनन्त सुख स्वरूप परमात्म पद की प्राप्ति के लिए मैं फूलो से पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ।)

येनान्वितं वरण-मालिकया धिनोति

साधुं विमुक्ति-वनिता स्वयमेव शक्ता ।

आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं

तज्ज्ञान-रत्नमसमं चरुभिर्धिनोमि ॥६॥

जिस ज्ञान से युक्त साधु पुरुष को मोक्ष लक्ष्मी समर्थ होकर भी स्वयमेव वरमाला डालकर पूजती है उस अनुपम सम्यग्ज्ञान रूपी रत्न को अनन्त सुख स्वरूप परमात्म पद की प्राप्ति के लिए मैं नैवेद्य से पूजता हूं।

(ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्य निर्वपामीति स्वाहा ।)

सामर्थ्यमत्र मुनिरुद्धत-मोक्ष-लक्ष्मी-

लुण्टाकमाशु लभते यदनुग्रहेण ।

आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं

तज्ज्ञान-रत्नमुरुदीपगणैर्महामि ॥१०॥

जिस ज्ञान के प्रभाव से मुनिगण उद्धत मोक्ष रूपी लक्ष्मी के लूटने की शीघ्र सामर्थ्य प्राप्त कर लेते हैं उस सम्यग्ज्ञान रत्न की अनन्त सुखरूप परमात्म पद की प्राप्ति के लिए बहुत से दीपकों से मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ।)

अह्नां प्रभोरविषयोऽपि तमःसमूहो

येनास्यते दलित-दृक्-प्रसरैः क्षणेन ।

आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान-रत्नमसमं प्रयजे सुधूपैः ॥११॥

सूर्य जिसे दूर नहीं कर सकता ऐसे अन्धकार समूह को मनोहर सम्यग्दर्शन रूपी आँखो के द्वारा क्षण भर में दूर करने वाले उस अनुपम सम्यग्ज्ञान रूपी रत्न की अनन्त सुख रूप परमात्म पद की प्राप्ति के लिए मैं धूप से पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय दुष्टाष्टकमदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।)

बन्धं छिनत्ति विरमत्यखिलाश्रयेभ्यो
विज्ञाय येन यतिरद्भुतमात्म-तत्त्वम्।
आनन्द-सान्द्र-परमात्म-पदाप्तयेऽहं
तज्ज्ञान-रत्नमसमं सुफलैर्यजामि ॥१२॥

मुनि जिसके द्वारा अद्भुत आत्म तत्त्व को जानकर कर्म बन्ध को नष्ट करते है और समस्त आस्रवों से विरत होते हैं उस अनुपम सम्यग्ज्ञान रूपी रत्न की परमात्म पद की प्राप्ति के लिए मैं फलो से पूजा करता हूं।

(ॐ ह्री अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।)

देवाकि-नाकि-निवहैः कृत-पाद-सेवः
स्वायम्भुवं पदमवाप्य युगादिदेवः।
येनात्र चित्र-कुसुमाञ्जलिमादरेण
ज्ञानाय साङ्गरचनाय ददामि तस्मै ॥१३॥

देवताओ ने जिनके चरणो की सेवा की उन ऋषभनाथ भगवान ने जिस ज्ञान के द्वारा स्वयंभू पद प्राप्त किया उस अष्टविध सम्यग्ज्ञान को मै विभिन्न प्रकारके फूलो की अंजलि आदर सहित समर्पण करता हूं।
(ॐ ह्रीं अष्टविधसम्यग्ज्ञानाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

अष्टांग-पूजा

श्रीमच्छरीरं श्रुत-देवतायाः
स्थानेषु चाष्टासु यदाप्त-जन्म।
ज्ञानाङ्गमाद्यौ शुभ-शसि सम्यक्
तद् व्यञ्जनाख्यं सततं नमामि ॥१४॥

जिस श्रुत देवता के शरीर ने आठ स्थानो मे जन्म लिया है उस सम्यग्ज्ञान के शुभसूचक व्यञ्जन नाम के प्रथम अङ्ग को मै नमस्कार करता हूँ।
(ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जिताय सम्यग्ज्ञानाय नम. अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

येनान्वितो कामदुहेव सम्यक्
सर्व—कल्याणकरी जगत्याम्।
ज्ञानाङ्गमानन्दित—भव्य-लोकं
तदर्थ-संज्ञं हृदये ममास्ताम् ॥१५॥

जिससे युक्त होकर वाणी कामधेनु गाय की तरह संसार मे सबका कल्याण करने मे समर्थ होती है, वह भव्य समूह

को आनन्दित करने वाला अर्थ नामका सम्यग्ज्ञान का अंग मेरे हृदय में हो।
(ॐ ह्रीं अर्थसमग्राय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

सञ्जायते येन जगत्यजय्य–
माहात्म्य—भूमिर्मनुजोऽचिरेण ।
ज्ञानाङ्गमाविश्रुत–विश्वतत्त्वं
तद् व्यञ्जनार्थोभयसंज्ञमोडे ॥१६॥

जिसके कारण मनुष्य शीघ्र ही लोक में अजेय माहात्म्य का स्थान हो जात है, विश्व के समस्त तत्वों को बतलाने वाले उस व्यञ्जन और अर्थ उभय रुप ज्ञानाङ्ग की मैं स्तुति करता हूं।
(ॐ ह्रीं तदुभयसमग्राय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

येनायमात्मा स्व-पर–प्रमाता
भव्यात्मानां गोचरतामुपैति ।
ज्ञानाङ्गमिष्टार्थ–विधायि नित्यं
तदत्र कालाध्ययनं महामि ॥१७॥

जिसके कारण यह आत्मा स्व और पर का प्रमाता होकर भव्यों का विषय होता है उस इष्टार्थ का विधान करने वाले कालाध्ययन नाम के अङ्ग की मैं नित्य पूजा करता हू।
(ॐ ह्रीं कालाध्ययनोद्बुद्धप्रभावाय सम्यग्ज्ञानाय नम अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

प्रारीप्सितस्याशु बुधोऽत्र येन
ग्रन्थस्य निर्विघ्नमुपैति पारम् ।
ज्ञानाङ्गमाचार—पथः प्रकाशि
तत्तूपधानाख्यमहं श्रयामि ॥१८॥

जिसके प्रभाव से प्राणी प्रारम्भ किये गये ग्रन्थ को निर्विघ्न शीघ्र समाप्त कर लेता है, आचार पथ का प्रकाश करने वाले उस उपधान नाम के ज्ञानाङ्ग का मै आश्रय लेता हूं।
(ॐ ह्रीं उपधानसमृद्धाय सम्यग्ज्ञानाय नम अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

सामीप्यमाप्यत्कुपितेव
जन्तोर्नाभ्येति येनाश्रित-चित्तवृत्तिः ।
ज्ञानाङ्गमानन्दभरेण सम्यग्
ज्ञान—प्रदं तद्विनयाख्यमीडे ॥१९॥

जिसके कारण कुपित हुई चित्तवृत्ति प्राणी का आश्रय नहीं करती है, ज्ञान प्रदान करने वाले उस विनय नाम के ज्ञानाङ्ग की मैं हर्ष पूर्वक स्तुति करता हूं॥
(ॐ ह्रीं विनयोन्मुद्रितमाहात्म्याय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

द्रव्य—श्रुत प्राप्य विमुक्ति—हेतुं
भाव-श्रुतं विन्दति येन योगी ।
ज्ञानाङ्गमध्यापक—सूरि—गुर्वनपह्नवाख्यं
हृदये ममास्ताम् ॥२०॥

जिसके कारण योगी द्रव्य श्रुत को प्राप्त कर मोक्ष के कारण भूत भाव श्रुत को जानता है, उपाध्याय, आचार्य या गुरु का निह्नव न करने वाला वह अनिह्नव नामका ज्ञानाङ्ग मेरे हृदय में वास करो।
(ॐ ह्रीं गुर्वाद्यनपह्नवाय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

नरं मुनीनामपि माननीयं
सुसेवितं चाद्भु तमातनोति।
ज्ञानाङ्गमीडे बहुमानसंज्ञं
नय-प्रमाणप्रतिपत्तये तत् ॥२१॥

जिसके धारण करने से मनुष्य को मुनि भी मानने लगते हैं और जिसकी सेवा से अद्भुत फल प्राप्त होता है उस बहुमान नामक अङ्ग की नय और प्रमाण ज्ञान की प्राप्ति के लिए मैं पूजा करता हूँ।
(ॐ ह्रीं बहुमानसमृद्धाय सम्यग्ज्ञानाय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

अष्टक

शुचि–तीर्थोद्भवैः नीरैः चिद्रूपस्योपलब्धये।
अङ्गानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२२॥

पवित्र तीर्थों के जल से आत्म स्वरूप की प्राप्ति के लिए ज्ञानाचार के व्यञ्जनादि अङ्गों की मैं पूजा करता हूं।
(ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।)

रसैर्मलयजोद्भूतैर्जरा-जन्मादि–शान्तये।
अंगानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२३॥

मलयगिरि चन्दन के जल से जरा और जन्म की शान्ति के लिए ज्ञानाचार के व्यञ्जनादि अङ्गो की मै पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्य: चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।)

अक्षतैरक्षतानन्त—सुख—सम्पत्ति—हेतवे

अंगानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य सयजे ॥२४॥

अविनाशी और अनन्त सुख-सम्पत्ति के लिए अक्षतो से ज्ञानाचार के व्यञ्जनादि अङ्गो की मै पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यो अक्षत निर्वपामीति स्वाहा।)

सुमनोभिर्मनोऽनल्प-सङ्कल्प—भ्रान्ति शान्तये ।

अंगानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२५॥

मन के अनेक संकल्प-विकल्पो की शान्ति के लिए फूलो से ज्ञानाचार के व्यञ्जनादि अङ्गो की मैं पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्य: पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।)

उरुभिश्च रुभिश्चारु—चिद्रूपामृत—लब्धये ।

अंगानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य सयजे ॥२६॥

चिद्रूत अमृत की प्राप्ति के लिए बहुत से नैवेद्यो के द्वारा ज्ञानाचार के व्यञ्जनादि अंगों की मै पूजा करता हूं।

(ॐ ह्री व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्य नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

प्रदीपैर्ज्योतिषा भक्त्या परज्योतिर्दिदृक्षया ।

अंगानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य सयजे ॥२७॥

केवलज्ञान रूप उत्कृष्ट ज्योति के देखने की इच्छा से भक्ति पूर्वक दीपको से ज्ञानाचार के व्यञ्जनादि अङ्गो की मैं

पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।)

धूपैर्दग्धागुरु-स्तोम-सम्भवैर्भव-हानये ।
अंगानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२८॥

संसार का अन्त करने के लिए अगुरु की बहुत सी धूप जलाकर ज्ञानाचारके व्यञ्जनादि अङ्गो की मैं पूजा करता हूं

(ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।)

नारंगैर्मुक्ति-संगैक-रस-मानस-लालसैः ।
अंगानि व्यञ्जनादीनि ज्ञानाचारस्य संयजे ॥२९॥

मुक्ति के ससर्ग में एक रस मानस की लालसावश नारङ्गी आदि फलो से ज्ञानाचार के व्यञ्जनादि अङ्गो की मै पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं व्यञ्जनोर्जितादिकेभ्य. फलं निर्वपामीति स्वाहा।)

श्रीनीर-चन्दन-वराक्षत-पुष्प-चारु-
नैवेद्य-दीपचय-धूप-फलार्घ्यकैश्च ।
ज्ञानांगमेव भुवने शुचि-केलि-वासं
पुष्पाञ्जलिं सुविमलं ह्यवतारयामि ॥३०॥

जल, चन्दन, उत्तम अक्षत, पुष्प, नैवेद्य, दीपचय, धूप और फलके समुच्चय रूप अर्घ्यों की पुष्पाञ्जलि बनाकर क्रीड़ा के पवित्र आवास रूप ज्ञानाङ्ग की मै आरती उतारता हूं।

(ॐ ह्रीं व्यञ्जनोजितादिकेभ्य. अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

जयमाला

जय जय जिनवर लोचन
चेतन-गुण-परम-केवल-ज्ञान ।

निखिल—द्रव्य—प्रदर्शक-
विगतोपम-सुख-सुधारस-कुण्ड ॥३१॥

हे जिनवर के लोचन, समस्त द्रव्यो को प्रकाशित करने वाले और अनुपम सुख रूपी अमृत के कुण्ड, आत्मा के उत्तम गुण रूप केवल ज्ञान ! तुम जयवंत होओ।

जिननाथ—सुलोचनमात्महितं
निरुपाधि-सुखामृत-पूर-चितम् ।
दृढ़-मोह-महातरु-वायु-सखं
भव-सम्भव-दुःख-विपद-विमुखम् ॥३२॥

जिनेन्द्र देव का ज्ञान रूपी उत्तम लोचन आत्मा का हित करने वाला है, उपाधि रहित सुख रूपी अमृत के पूर से परिपूर्ण है, दृढ़ मोह रूपी वृक्ष के लिए अग्नि के समान है और ससार जन्य दु ख और विपदाओ से रहित है।

मति—शान्त-महावधि-भेद-युतं
सुमनोऽद्भुत—पर्यय—संविततम् ।
उचितोचित—काल—सुपाठ-वरं
गुरुभक्ति-पुराकृत-पापहरम् ।३३।

मतिज्ञान और परम शान्त महान अवधि ज्ञान के भेदो से युक्त है, उत्तम मन की अद्भुत पर्याय रूप मन.पर्यय ज्ञान से विस्तृत है, अत्यन्त योग्य काल में द्रव्य श्रुत का पाठ करने से श्रेष्ठता को प्राप्त है और गुरु भक्ति के फल स्वरूप पुराकृत पापो को हरण करने वाला है।

उपधान—विदूरित-विघ्न-घनं

बहु-मान-निराकृत—कर्म—रणम् ।

निज-पाठक-निह्नव—मुक्ति—भरं

विशदाक्षर—पूर-समग्रतरम् ।३४।

उपधानाचार के कारण जो विघ्नो को दूर करने वाला है, बहुमानाचार के कारण जो आत्मा को कर्मों की रण स्थली नहीं बनने देता, अपने पाठक का निह्नव न करने के कारण जो अनिह्नवाचार से युक्त है और बिशुद्ध अक्षर पूर अर्थात अक्षराचार्य के कारण जो परिपूर्णता प्रो प्राप्त है।

अभिधेय-परंपरया सहितं शुचि

तद्द्वय—शुद्धतरं—महितमं ।

कुसुमायुध—दुर्धर—वह्नि—वन

प्रतिबोधित-भव्य-यतीश-जनम् ।३५।

अभिधेय की परम्परा अर्थात अर्थाचार से युक्त है, शब्द और अर्थ रूप उभयाचार के कारण शुद्धतर और पूज्य है, दुर्धर काम का नाश करने के लिए उत्कृष्ट अग्नि के समान है और भव्य यति जनो को प्रतिबोधित करने वाला है।

बहु-लोभ—महीधर—सद्द्विरदं

अपहस्तित—राग-रुजा-प्रसरम् ।

अखिलात्म—दया-कथकं विशदं

परिखण्डित-दुर्जय-मान-मदम् ।।३६।।

बहुत लोभ रूपी वृक्ष के लिए उत्तम हाथी के समान है राग रूपी रोगों के प्रसार को रोकने वाला है, सम्पूर्ण प्राणियों की दया का उपदेश करने वाला है, विशद है और कठिनता से जीते जाने वाले मान और मद का खण्डन करने वाला है।

सुविवेक-सरोरुह-तिग्मकरं

परमात्म-विकाशक-युक्ति—करम् ।

प्रणमामि जडत्व-रजः—शमकं

शुचि-बोधमनन्त-रमा-जनकम् ॥३७॥

विवेक रूपी कमल को विकसित करने के लिए सूर्य की किरणों के समान है, जिससे परमात्मा का प्रकाश होता है ऐसी अनेक युक्तियों से सम्पन्न है, जड़ ज्ञानावरणादि कर्मों को नाश करने वाला है और अनन्त मोक्ष रूपी लक्ष्मी का जनक है उस पवित्र ज्ञान को मैं नमस्कार करता हूं।

इत्थं ज्ञानस्य साङ्गस्य स्तुतिं यो भक्ति-तत्परः ।

विधत्ते सोद्भुतं सौख्यं लभते भव विच्युतिम् ।३८।

इस प्रकार जो भक्ति पूर्वक अष्टांग ज्ञान की स्तुति करता है वह संसार से रहित अद्भुत सुख को प्राप्त करता है

दोषोच्छेद-विजृम्भितः कृत-तमश्छेदः शिव-श्री-पथः

सत्त्वोद्बोध-प्रकर-प्रक्लृप्त-कमलोल्लास-स्फुरद्वैभवः

लोकालोक-कृत-प्रकाश-विभवः-कीर्ति-जगत्पावनीं

तन्वन् क्वापि चकास्तिबोध-तपनः

पुण्यात्मनि व्योमनि ॥३९॥

जो दोषों का उच्छेद कर वृद्धि को प्राप्त हुआ है,

अज्ञानान्धकार का हर्ता है, मोक्ष लक्ष्मी का मार्ग है, जीवों के विवेक रूपी कमल का विकास करने से जिसका वैभव स्फुरायमान हो रहा है, जो लोकालोक को प्रकाशित करने रूप वैभव से सम्पन्न है, जगत पावनी कीर्ति का विस्तार करने वाला है, ऐसा ज्ञान रूपी सूर्य किसी पुण्यात्मा रूपी आकाश मे सुशोभित होता है।

अर्थ-व्यञ्जन-तद्द्वयाविकलता कालोपध-प्रश्रयः

स्वाचार्याद्यनपह्नवो बहुमतिश्चेत्यष्टधा व्याहृतम ।

श्रीमद्ज्ञाति-कुलेन्दुना भगवता तीर्थस्य कर्त्राञ्जसा

ज्ञानाचारमहं त्रिधा प्रणयितामुद्धूतये कर्मणाम्।४०।

ज्ञातवंश के चन्द्रमा भगवान तीर्थङ्कर महावीर ने जिस ज्ञान के व्यञ्जनाचार, अर्थाचार, उभयाचार, कालाचार, विनयाचार, उपधानाचार, अनिह्नवाचार इस प्रकार आठ भेद बतलाये हैं उस ज्ञान को कर्मों का नाश करने के लिए मै प्रणाम करता हू।

(ॐ ह्रीं अष्टविधाचाराय सम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

यः सर्वथैकान्तनयान्धकार—

प्राचारमस्यन्नय—रश्मिजालै. ।

विश्व-प्रकाशं विदधाति नित्यं

पायादनेकान्त-रविः स युष्मान् ।।४१।।

जो सम्यक नय रूपी किरणो से सर्वथा एकान्त रूपी

नयान्धकार के प्रचार को दूर करता हुआ सदा विश्व को प्रकाशित करता है वह अनेकान्त सूर्य आपकी रक्षा करे।

(इत्याशीर्वाद. ।)

दुरित-तिमिर-हंसं मोक्ष-लक्ष्मी-सरोजं
मदन-भुजग-मन्त्रं चित्त-मातंग-सिंहम् ।
व्यसन-घन—समीरं विश्व-तत्त्वैक-दीप
विषय-सफर-जालं ज्ञानमाराधय त्वम् ।४२।

पाप रूपी अन्धकार को नष्ट करने के लिए जो सूर्य के समान है, मोक्ष लक्ष्मी के लिए जो कमल के समान है, काम रूपी सर्प के लिए मन्त्र के समान है, मन्त्र रूपी हाथी को सिंह के समान है, व्यसन रूपी बादलों को हवा के समान है, विश्व तत्त्व के प्रकाशन के लिए दीपक के समान है और विषय रूपी मछलियों के लिए जल के समान है उस ज्ञान की तुम आराधना करो।

(इत्याशीर्वाद ।)

सम्यक्चारित्र

आनन्द-रूपोऽखिलकर्म-मुक्तो
निरत्ययः ज्ञानमयः सुभावः ।
गिरामगम्यो मनसोऽप्यचिन्त्यो
भूयान् मुदे वः पुरुषाः पुराणः ॥१॥

जो आनन्द रूप है, सम्पूर्ण कर्मों से रहित है, अविनाशी है, ज्ञानमय है, उत्तम भाव रूप है, वाणी के अगोचर है,

मन से भी अचिन्त्य है वह पुराग-पुरुष तुम सब के हर्ष के लिए हो।

वारणं दुर्गतेः स्वर्गापवर्ग—सुख—कारणम् ।
निवृत्ति-लक्षणं पाप-क्रियायाश्चरणं स्तुवे ॥२॥

जो दुर्गति का निवारक है, स्वर्ग और मोक्ष के सुख का कारण है और पाप क्रिया से निवृत्तिस्वरूप है उस चारित्र की मैं स्तुति करता हूँ।

सामायिकादयो भेदा यस्य पञ्च प्रपञ्चिताः ।
चरणं शरणं यामि तन्निर्वाणैक-कारणम् ॥३॥

जिसके सामायिकादि पॉच भेद कहे गए हैं, मोक्ष के कारण रूप उस चारित्र की मैं शरण लेता हू ।

व्रतानि पञ्च पञ्चैव प्रोक्ताः समितयस्त्रयः ।
गुप्तयो व्रतमित्याप्तैस्त्रयोदशविधं स्मृतम् ॥४॥

पॉच व्रत पॉच समिति और तीन गुप्ति इस प्रकार आप्त पुरुषों ने तेरह प्रकार का चारित्र कहा है।

संसार-पल्वलोद्भूतैर्विलिप्तः कर्म-दर्दमैः ।
विशुद्धयति किलात्मायमंजसा चरणाम्भसा ॥५॥

ससार रूप तालाब से उत्पन्न हुए कर्म रूपी कीचड़ से लिप्त यह आत्मा नियम से चारित्र रूपी जल से शुद्ध होता है।

ज्ञानपंचकभूतीनां भाजनं यो मुनीश्वरः ।
तत्केवलमहं मन्ये चारित्रस्य विजृंभितम् ॥६॥

जो मुनीश्वर पाँच प्रकार के ज्ञान रूपी विभूति के

के पात्र हैं, वह केवल चारित्र का ही विस्तार है ऐसा मैं मानता हूं।

यदत्र मनसोऽचिन्त्यं यच्च वाचामगोचरम् ।
एकेन चारणेनैव तत्साध्यं किं बहूच्यते ॥७॥

अधिक कहने से क्या, इस लोक मे जो मन से अचिन्त्य है और जो वचनो से अगोचर है वह एक मात्र चारित्र के द्वारा ही साधा जा सकता है।

नरोऽपि यत्सुराधीश-शिरोरत्नत्वमंचति ।
जगत्त्रयैक-पूज्यस्य तच्चारित्रस्य वैभवम् ॥८॥

मनुष्य होकर भी जो इन्द्रो से पूज्य हो जाता है वह सब इस त्रिलोक पूज्य चारित्र का ही वैभव है।

चारण स्वर्गतेर्मूलं चारणं मुक्तिसाधनम् ।
चारणं धर्म–सर्वस्वं चरणं मंगल परम् ॥९॥

चारित्र देवगति का मूल कारण है, चारित्र मुक्ति का साधन है, चारित्र धर्म का सर्वस्व है और चारित्र उत्कृष्ट मंगल है।

अनन्त-सुख—सम्पन्नो-येनात्माऽयं क्षणादपि ।
नमस्तस्मै पवित्राय चारित्राय पुनः पुनः ॥१०॥

जिसके प्रभाव से यह आत्मा क्षण भर मे अनन्त सुख से सम्पन्न हो जाता है उस पवित्र चारित्र को पुन. पुनः नमस्कार हो।

(प्रणामं कृत्वा पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि ।)

सद्वृत्तं सर्व–सावद्य–योग–व्यावृत्तिरात्मनः ।
गौणं स्याद्वृत्तिरानन्दा-सान्द्रकर्मच्छिदांजसां ।११।

सम्पूर्ण पाप रूप अशुभ क्रियाओं से अपने आपको हटा लेना सघन कर्मों को नष्ट करने वाला व्यवहार सम्यक चारित्र है।

न मुह्यति न च क्वापि रज्यते द्वेष्टि गात्मवित् ।
येनान्वितोऽपि चारित्रमवतारं करोतु तत् ॥१२॥

जिस चारित्र को पाकर आत्म ज्ञानी पुरुष न कहीं मोहित होता है, न कहीं राग करता है और न किसी से द्वेष करता है उस चारित्र का सब लोग आह्वान करो।
(ॐ ह्री त्रयोदशप्रकार सम्यक् चारित्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट्)

अनादि—कर्मोत्कर—कालिमाभिः
कलङ्कितं जीवममुं विशुद्धम् ।
यत्प्रापयत्यत्र चरित्रमुच्चैस्तत्तिष्ठतु
ध्वस्त—समस्त—दोषम् ॥१३॥

अनादि कर्म रूपी कालिमा से मलिन हुए इस जीव को जो विशुद्ध और उच्च पद तक पहुँचा देता है वह समस्त पापो को नष्ट करने वाला सम्यक् चारित्र यहाँ स्थित होओ।
(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकार सम्यक् चारित्र ! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः ।)

अनन्त—केवलज्ञान—सुखश्री—जीवनौषधम् ।
लसन्महिमसांनिध्यमध्यास्तां चरणं मम ॥१४॥

अनन्त केवलज्ञान और अनन्त सुख रूप लक्ष्मी को जलाने के लिए जो औषधि के समान है वह अपार महिमा वाला चारित्र मेरे निकटवर्ती होओ।
(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकार सम्यक् चारित्र ! अत्र मम सन्निहितं भव भव वषट् ।)

श्रीकेवलेक्षण—विलोकितविश्व-तत्त्वै-
र्यस्य प्रभावममितं गदितं जिनेशैः ।
चारित्रमत्र तदपास्त—समस्त-पापं
चाये त्रयोदशतयं शुचिभिर्जलौघैः ।।१५।।

केवल ज्ञान रूपी आँखों से विश्व के समस्त तत्त्वों को देखने वाले जिनेन्द्र देव ने जिसका अमित प्रभाव बतलाया है, समस्त पापों से रहित उस तेरह प्रकार के चारित्र की मैं यहाँ पर पवित्र जल से पूजा करता हूँ।
(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।)

आलम्बनं तनुभृतां पतताममीषां
दैवादगाध-जननाम्भसि निर्दयेऽस्मिन् ।
चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं
चाये त्रयोदशतयं वर-चान्दनौघैः ।।१६।।

दैववश अगाध संसार रूपी इस निर्दय समुद्र में गिरने वाले इन प्राणियों के लिए जो आलम्बन है, उस समस्त पापों से रहित तेरह प्रकार के चारित्र की मैं उत्तम चन्दन से पूजा करता हूँ।
(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय संसारतापविध्वंसनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।)

यत्पालयन्निरतिचारमुदारसत्त्वो

भव्यो भवत्यखिल-लोक-ललाम-भूतः ।

. चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं

चाये त्रयोदशतयं ललिताक्षतौघैः ॥१७॥

उदार भव्य जीव जिस चारित्र का निरतिचार पालन कर सम्पूण लोक के भूषण बन जाते हैं, समस्त पाप से रहित तेरह प्रकार के उस चारित्र की सुन्दर अक्षतो से मैं पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।)

संसार-मारव-महीषु यदच्छ-वारी-

पूर्णं सरः श्रितवतां गुरु-ताप-हारि ।

चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं

चाये त्रयोदशतयं कमलैरुदारैः ।१८।

समार रूपी मरुभूमि में स्वच्छ जल से परिपूर्ण सरोवर के समान आश्रय करने वालों करने वालों का जो बड़े भारी सन्ताप को दूर कर देता है, समस्त पापो से रहित तेरह प्रकार के उस चारित्र की मैं उदार कमल-पुष्पों से पूजा करता हू।

(ॐ ह्री त्रयोदशप्रकारचारित्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।)

दुर्वार-दुर्गति-निबन्धनमष्टकर्म-

काष्ठं यदग्निरिव निर्दहति क्षणेन ।

चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त-पापं

चाये त्रयोदशतयं चरुभिर्विशुद्धैः ॥१९॥

दुर्निवार दुर्गति के कारण आठ कर्म रूपी काठ को जो अग्नि के समान क्षण भर मे जला देता है, समस्त पापा से रहित तेरह प्रकार के उस चारित्र की मै शुद्ध नैवेद्य से पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकार चारित्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

पूर्वैरवाप्यवगमः खलु वर्तमानैः

येनाप्यते जगति भाविभिराप्स्यते च ।

चारित्रमत्र तदपास्त–समस्त–पापं

चाये त्रयोदशतयं विशद-प्रदीपैः ।२०।

जिसके कारण पूर्व पुरुषो ने केवल ज्ञान प्राप्त किया वर्तमान मे कर रहे हैं और आगे होने वाले करेंगे, समस्त पापो से रहित तेरह प्रकार के उस चारित्र की मै विशद दीपो से पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीप निर्वपामीति स्वाहा।)

आविर्भवन्ति यमिनां विविधर्द्धयस्ताः

येनाङ्कुरा इव नवाम्बु–धरेण सम्यक् ।

चारित्रमत्र तदपास्त–समस्त-पापं

चाये त्रयोदशतयं वर-धूप-धूम्रैः ॥२१॥

जिस प्रकार नूतन मेघों से सदा काल अंकुरोंकी उत्पत्ति होती है उसी प्रकार जिसके प्रभाव से साधुओं के अनेक ऋद्धियाँ उत्पन्न होती है, समस्त पापों से रहित तेरह प्रकार के उस चारित्र की मैं उत्तम धूप के धुएँ से पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय दुष्टाष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।)

जन्म-प्रबन्ध-शमनाय परात्म-निष्ठैः

यत्सेव्यते परमनन्त-सुख-प्रदायि ।

चारित्रमत्र तदपास्त-समस्त पापं

चाये त्रयोदशतयं विपुलैः फलौघैः ॥२२॥

आत्मनिष्ठ पुरुष संसार-परंपरा को नष्ट करने के लिए अनन्त सुख के देने वाले जिस उत्कृष्ट चारित्र की उपासना करते हैं, समस्त पापो से रहित तेरह प्रकार के उस चारित्र की मैं बहुत फलो से पूजा करता हूँ।

(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।)

शुद्धोपयोग उपलब्धमनन्त-सौख्यं

सिद्धान्तसारमुररीकृतमात्मविद्भिः ।

सन्मुक्तिसंवरणमद्भुतमादरेण

तद्वृत्तमत्र कुसुमांजलिना धिनोमि ॥२३॥

जिसके कारण आत्म-ज्ञानियों को आदर पूर्वक शुद्धोपयोग और अनन्त सुख की प्राप्ति हुई, धर्म का मर्म स्वीकृत हुआ और अन्त मे समीचीन मुक्ति का लाभ हुआ उस

सम्यक् चारित्र की मै कुसुमाञ्जलि से पूजा करता हूं।

(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकारचारित्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

त्रयोदशांग-पूजा

निराकुलं जन्म-जरार्ति-हीनं

निरामयं निर्भयमात्म—सौख्यम्।

फलं यदीयं करुणामयं

तन्महाव्रत सन्ततमाश्रयामि ॥२४॥

जिसका फल निराकुल, जन्म, जरा और पीड़ा से रहित, निरामय तथा निर्भय आत्मसुख की प्राप्ति है, करुणा मय उस अहिंसा महाव्रत का मै सदा आश्रय करता हूँ।

(ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रताय नम अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

वक्तृत्वमुच्चैः सरसं कवित्वं

श्रुतावगाहश्च फलं यदीयम्।

तत्सत्यवाक्याद्भुतरूपमेतन्महाव्रतं

सन्ततमाश्रयामि ॥ २५ ॥

जिसका फल गम्भीर वक्तृत्व सरस कवित्व और श्रुत का अवगाहन करता है, अद्भुत वचन रूप उस महाव्रत का मै सदा आश्रय लेता हूँ।

(ॐ ह्रीं सत्यमहाव्रताय नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

अनर्थ—मूलस्य जगत्यदत्तानस्य

यत्सत्यजनं त्रिधाऽत्र।

तदद्भुतं स्तेय–निवृत्तिरूपं

महाव्रतं सन्ततमाश्रयामि ॥२६॥

इस लोक में अनर्थ की जड अदत्ता दान का मन, वचन और काय से त्याग कर देना अचौर्य है। उस अद्भुत अचौर्य महाव्रत का मै नित्य आश्रय लेता हूँ।

(ॐ ह्री अचौर्यमहाव्रताय नम अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

अरं नभो रत्नमिव ग्रहेषु

व्रतेषु सर्वेष्वपि यद्विभाति ।

तद्ब्रह्मचर्यादभुत–रूपमेतन्महाव्रतं

सन्ततमाश्रयामि ॥२७॥

जैसे सम्पूर्ण ग्रहो मे प्रधान सूर्य होता है वैसे ही जो सात व्रतो मे प्रधान है उस अद्भुत ब्रह्मचर्य महाव्रत का मैं आश्रय लेता हूँ।

(ॐ ह्री ब्रह्मचर्यमहाव्रताय नम अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

दुर्वार—कर्मास्रव-वारणं यत्

ससाधनं—दुर्जय—निर्जरायाः ।

तदव्र मूर्च्छा–विलयैकरूपं

महाव्रतं सन्ततमाश्रयामि ॥२८॥

जो बलवान् कर्म के आश्रव को रोकता है और जो दुर्जय निर्जरा का साधक है उस मूर्च्छा के त्याग रूप महाव्रत का मै सदा आश्रय लेता हू।

(ॐ ह्रीं आकिञ्चन्यमहाव्रताय नम· अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

व्रतानि शीलान्यखिलानि यां बिना
विधीयमानान्यफलानि सर्वतः ।
अतः परं ब्रह्मपदोपलब्धये
हि तां मनोगुप्तिमुपाश्रयामि ॥२९॥

जिसके बिना पाले गये व्रत और शीलादि सभी सर्वथा निष्फल हैं, परमात्म पद की प्राप्ति के लिए उस मनोगुप्ति का मै आश्रय लेता हूँ।

(ॐ ह्रीं मनोगुप्तये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

भवन्ति यस्यां गणनातिगा गुणाः
सत्यामसत्यादि-निवृत्ति-सम्भवाः ।
भवापदामन्तमरं विधित्सतः
सा मे वचोगुप्तिरुदेति मानसे ॥३०॥

जिसके होने पर असत्य आदि की निवृत्ति से उत्पन्न होने वाले अगणित गुण प्राप्त होते हैं, संसार की आपदाओं का शीघ्र ही अन्त चाहने वाले मेरे मन में वह वचनगुप्ति उदित हो।

(ॐ ह्रीं वचोगुप्तये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

अतीन्द्रियज्ञानमिमे जितेन्द्रियाः
समाद्रियन्ते खलु यत्प्रसादात् ।
सकायगुप्तिः करुणारसाम्बुधेः
ममास्तु दुर्वार-तमोऽपहारिणी ॥३१॥

जिसके प्रसाद से जितेन्द्रिय पुरुष अतीन्द्रिय ज्ञान को

प्राप्त करते हैं, करुणा रस के समुद्र मेरे दुर्वार तम का हरण करने वाली वह कायगुप्ति हो।

(ॐ ह्रीं कायगुप्तये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

प्रमादमुक्त्या युगमात्रदृष्टया
स्पष्टे करैरुष्णकरस्य मार्गे।
या वै गतिः सा समितिः किलेर्या
मान्या मुनीनां हृदये ममास्ताम् ॥३२॥

सूर्य की किरणों से मार्ग के स्पष्ट होने पर प्रमाद रहित होकर चार हाथ आगे जमीन देखते हुए जो गति होती है, मुनियों द्वारा मान्य वह ईर्या समिति मेरे हो।

(ॐ ह्रीं ईर्यासमितये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

संकीर्तनैस्तीर्थकृतां जिनानां
पवित्रतोच्चैर्दश—दोष—मुक्ता।
विनिश्चितार्था समितिर्गरिष्ठा
मोक्षाय भाषा हृदये ममास्ताम् ॥३३॥

जो तीर्थङ्कर जिनेन्द्र के स्तवन से पवित्र है दस दोषों से रहित है और निश्चित पदार्थों का प्ररूपण करती है, मोक्ष प्राप्ति मे प्रयोजक व उत्कृष्ट भाषा समिति मेरे हृदय में वास करो।

(ॐ ह्रीं भाषासमितये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

अप्रार्थितं दोष—सहस्र-
मुक्तमाहारमात्रं गृह्णतो मुमुक्षोः।

उत्पद्यते या नव-कोटि-शुद्धया

शुद्धैषणा सा हृदये ममास्ताम् ।।३४।।

हजारो दोपो से रहित बिना मॉगे आहार मात्र को ग्रहण करने वाले मुमुक्षु पुरुष के नवकोटि शुद्ध जो उत्पन्न होती है वह शुद्ध एषणा समिति मेरे हृदय मे वास करो।
(ॐ ह्रीं एषणासमितये नमः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

पूर्वं पदार्थान् प्रतिलिख्य

पश्चान्निक्षेपणं यद् ग्रहणं च तेषाम् ।

आदान—निक्षेपण—नामतः

सा ख्याता विशुद्धा हृदये ममास्ताम् ।३५।

पहले पदार्थों का शोधन करके बाद में उनको रखना और ग्रहण करना इस प्रकार जो आदान-निक्षेपण इस नाम से प्रसिद्ध है वह समिति सदा मेरे हृदय मे वास करो।
(ॐ ह्रीं आदाननिक्षेपणसमितये नम अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

देशे शुचौ प्राणिगणोज्झिते

यत् श्लेष्मादिकोत्सर्जनमप्रमादम् ।

भव्यैरहिंसाव्रतसिद्धये मा

व्युत्सर्गसंज्ञा प्रतिपालनीया //३६//

जीव रहित प्रासुक स्थान मे प्रमाद रहित होकर श्लेष आदि के उत्सर्ग करने रूप उत्सर्ग समिति का भव्य पुरुषों को अहिसा व्रत की सिद्धि के लिए सदा पालन करना चाहिए।
(ॐ ह्रीं प्रतिष्ठापनसमितये नम अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

अष्टकम्

वारत्रयं तत्पुरतो लुठद्भिर्जलैर्जडत्वापनिनीषयेव ।
व्रतानि सत्य–प्रभृतीनि हर्षाद्
गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥३७॥

जडत्व (अज्ञान) को दूर करने की इच्छा से ही मानो तीन बार जल चढाकर सत्य आदि पॉच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियों की हम पूजा करते हैं ।

(ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा ।)

सच्चन्दनैश्चन्द्र–सितैः
सुगन्धीकुर्वद्भिराशाः परितः समस्तः ।
व्रतानि सत्य–प्रभृतीनि हर्षाद्
गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥३८॥

समस्त दिशाओ को चारो ओर से सुगन्धित करने वाले चन्द्रमा के समान श्वेत श्रेष्ठ चन्दन से सत्य आदि पॉच महाव्रत, तीन गुप्ति और पॉच समितियो की हम पूजा करते हैं ।

(ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यः चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा ।)

पुण्यानुपुञ्जैरिव तण्डुलौघैः
पुञ्जैः शरच्चन्द्र–करावदातैः ।
व्रतानि सत्य–प्रभृतीनि हर्षाद्
गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥३९॥

मानो पुण्य के शरत्कालीन पुञ्ज ही हों ऐसे चंद्रकिरण के समान स्वच्छ चावलों के पुञ्ज से सत्यादि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियों की हम पूजा करते हैं।

(ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यो अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।)

जात्यादि-सत्पुष्प-मतल्लिकाभिः
श्रीमल्लिकाभिर्भव—ताप—नुत्यै ।
व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षाद्
गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥४०॥

चमेली और मालती आदि सुन्दर तथा श्रेष्ठ फूलों से ससार ताप को दूर करने के लिए हम सत्यादि पाँच महाव्रत तीन गुप्ति और पाँच समितियों की हम पूजा करते हैं।

(ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्य. पुष्प निर्वपामीति स्वाहा।)

प्राणानुदारैरमृतैरिवान्नैरभ्युद्धरद्भिर्निखिलाङ्गभाजाम्
व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षाद्
गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥४१॥

अमृत के समान सभी प्राणियों के प्राणों के प्रति उदार ऐसे किये गये नैवेद्य से सत्य आदि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियों की हम पूजा करते हैं।

(ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

नदत्सु वाद्येषु जयेति शब्दान्
वदत्सु लोकेषु मणि-प्रदीपैः ।
व्रतानि सत्य—प्रभृतीनि हर्षाद्
गुप्तीर्यजामः समितीश्च पञ्च ॥४२॥

वाद्यनाद्य होते समय और लोगो के द्वारा जय जय शब्दों का उच्चारण करते समय मणियो के दीपकों के सत्य आदि पाच महाव्रत, तीन गुप्ति और पॉच समितियो की हम पूजा करते हैं।

(ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।)

एकेन्द्रियोत्पत्ति—जिहासयेव
क्षिप्तैरग्नौ स्वमिहागुरौघैः ।
व्रतानि सत्य—प्रभृतीनि हर्षाद्
गुप्तीर्यजामः समितीश्च पंच ॥४३॥

एकेन्द्रियो मे उत्पन्न होने की इच्छा से ही मानो अग्नि में क्षेपण की गयी अगुरु आदि की धूप से सत्य आदि पॉच महाव्रत, तीन गुप्ति और पॉच समितियो की हम पूजा करते हैं।

(ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।)

जम्बीर—नारङ्ग—सुपक्व-जम्बू—
फलोत्तमाद्यैर समुद्गिरद्भिः ।

व्रतानि सत्य-प्रभृतीनि हर्षाद्

गुप्तीर्यजामः समितीश्च पंच ॥४४॥

नीबू नारंगी और पके हुए जामुन आदि रसीले उत्तम फलों से सत्य आदि पाँच महाव्रत, तीन गुप्ति और पाँच समितियों की हम पूजा करते हैं।

(ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।)

जल-चन्दन-विशदाक्षत-सुशोभिना

मोक्ष-सौख्य-संलब्ध्यै ।

कुसुमाञ्जलिना नित्यं

वृताङ्गान्यादरात्प्रयजे ॥४५॥

जल, चन्दन और निर्मल अक्षत आदि से सुशोभित कुसुमाञ्जलि से मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए हम भक्ति पूर्वक चारित्र के अवान्तर भेदों की पूजा करते हैं।

(ॐ ह्रीं अहिंसामहाव्रतादिकाङ्गेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

जयमाला

जय जय शिव-सुखकारण दुर्गति-वारण

सकल-सत्त्व-सूचित-करण ।

पर-नय-कृत-दूषण मुनि-गण-भूषण

भव्य-निवह-संस्तुत-चरण ॥४६॥

जो मोक्ष सुख का कारण है, दुर्गति का वारण करता है, समस्त जीवों के परिणामों का सूचन करने वाला है, मिथ्या नयो का खण्डन करता है, मुनि संघ का भूषण है और भव्य जीव जिसकी स्तुति करते हैं ऐसे हे सम्यक् चारित्र तुम जयवन्त होओ।

करुणा-रस-पूरितयात्महितं
बहु-भक्ति-परामरनाथ-नुतम् ।
परमं शिव-सौध-निवासकरं
चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥४७॥

करुणा रस से परिपूर्ण, आत्मा के हितकारी, भक्तिपूर्वक इन्द्रों से स्तुत, मोक्ष में पहुँचाने वाले उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्र को मैं प्रणाम करता हूं।

शुचि-केवल-केलि-कला-सदनं
जित-सूचित-विश्व-विपन्मदनम् ।
परम-शिव-सौध-निवास-करं
चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥४८॥

पवित्र केवल ज्ञान की क्रीड़ा के घर, दुःखकारी, काम-जेता, मोक्ष रूपी महल में पहुंचाने वाले उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्र को मैं नमस्कार करता हूं।

विशदागमविन्मुनिनाथ-धनं
दुरितौघ-धनञ्जय-चण्डघनम् ।
परमं-शिव-सौध-निवास-करं
चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ॥४९॥

निर्दोष शास्त्रो के ज्ञाता मुनिराजो के धन रूप, पाप रूपी बादलो के लिए प्रचण्ड पवन रूप तथा मोक्ष रूपी महल में पहुँचाने वाले उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्र को मैं प्रणाम करता हूँ ।

रमणीय–विमुक्ति–रमा-कमलं
सुविवेककरं हत-दुःख-मलम् ।
परमं-शिव-सौध-निवास-करं
चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ।।५०।।

सुन्दर मोक्ष लक्ष्मी के लिए कमल के समान, उत्तम विवेक के जनक, दुःख रूपी मल के नाशक, मोक्ष लक्ष्मी रूपी महल मे पहुँचाने वाले उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्र को मैं प्रणाम करता हूँ ।

ममता–रजनी–दिवसाधिपतिं
प्रकटीकृत–सत्य परात्म-हितम् ।
परमं शिव–सौध–निवास-करं
चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ।।५१।।

मोह रूपी रात के लिए सूर्य के समान, सत्य को प्रकाशित करने वाले, दूसरे का और अपना हित करने वाले तथा उत्कृष्ट मोक्ष रूपी महल मे पहुँचाने वाले, उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्र को मै प्रणाम करता हूं ।

घन–कर्म–पयोद–समीरमलं
सुतरीकृत-शोक–पयोधि–जलम् ।

परमं शिव–सौध–निवास-करं

चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ।।५२।।

सघन कर्म रूपी बादलो के लिए वायु के समान, शोक रूपी समुद्र के जल से पार करने मे समर्थ, मोक्ष रूपी महल मे पहुँचाने वाले, उत्कृष्ट तथा विशुद्ध चारित्र को मैं नमस्कार करता हू ।

जनताभिमतार्थकरं सुखदं

भव-भीति-हरं कृत—सिद्ध-पदम् ।

परमं शिव-सौध—निवास-करं

चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ।।५३।।

जीवों के अभीष्ट पदार्थों के देने वाले, सुखदाता, संसार भय के हर्ता, सिद्ध–पद-प्रदाता, मोक्ष रूपी महल मे पहुँचाने वाले उत्कृष्ट और विशुद्ध चारित्र को मैं प्रणाम करता हूं ।

मद—राग-कषाय-रजः-शमनं

भव–दुर्जय–दानव–संदमनम् ।

परमं शिव–सौध-निवास-करं

चरणं प्रणमामि विशुद्धतरम् ।।५४।।

मद और राग कषाय रूपी रज को शमन करने वाले, दुर्जय भव रूपी दानव को पछाड़ने वाले, मोक्ष रूपी महल मे पहुचाने वाले, उत्कृष्ट तथा विशुद्ध चारित्र को मै प्रणाम करता हू ।

इत्थं चारि —रत्नं यः संस्तवीति पवित्रधीः ।

अभिप्रेतार्थ-संसिद्धि स प्राप्नोत्यचिरान्नरः ।।५५।।

इस प्रकार जो निर्मल बुद्धि का धारक पुरुष चारित्र रत्न की स्तुति करता है वह शीघ्र ही अभीष्ट अर्थ की सिद्धि को प्राप्त होता है।

ते केनापि कृताजवंजवजयाः सिद्धा सदा पान्तु वः
संप्राप्तानि पुरा त्रि पञ्च यदि वा चत्वारि वृत्तानि यैः
मुक्ति-श्री-परिरम्भ-शुम्भ-दशकस्थानेषु भावात्मना
केनाप्येकतमेन वीत-विपदः स्वात्माभिषिक्ताः पदे ।५६।

जिन्होने तीन, पॉच अथवा चार चारित्रो का सम्मान किया है, जो मुक्ति रूपी लक्ष्मी के शुभ आलिङ्गन से प्राप्त दश स्थानो से भाव रूप किसी एक द्वारा विपत्तियो का अन्त करने मे समर्थ हुए और जो आत्म पद मे स्थित है, किसी भी चारित्र के द्वारा ससार का अन्त करने वाले वे सिद्ध परमेष्ठी तुम लोगो की रक्षा करे।

तिस्त्रः सत्तम-गुप्तयस्तनु-मनो-भाषा-निमित्तोदयाः
पञ्चेर्यादि-समाश्रयाः समितयः पंच व्रतानीत्यपि ।
चारित्रोपहितं त्रयोदशतय पूर्वं न दृष्ट परै-
राचारं परमेष्ठिनो जिनपतेः वीरान्नमामो वयम्।५७।

शरीर, मन और भाषा के निमित्त से उत्पन्न हुई तीन समीचीन गुप्तियॉ, ईर्या आदि पॉच समितियॉ और पॉच महाव्रत इस प्रकार जिस तेरह प्रकार के चारित्र को जिन-वर महावीर परमेष्ठी के पूर्व अन्य कोई नहीं जानता था उस चारित्र को हम नमस्कार करते हैं।

(ॐ ह्रीं त्रयोदशप्रकार सम्यक्चारित्राय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।)

श्रद्धा स्वात्मैव शुद्धः प्रमदवपुरुपादेय इत्यांजसी दृक्
यस्यैव स्वानुभूत्या पृथगनुभवनं विग्रहादेश्च संवित् ।
तत्रैवात्यन्त-तृप्त्या मनसि
लयमितेव स्थितिःस्वस्य चर्या ।
स्वात्मानं भेद-रत्नत्रय-
परमपरं तन्मयं विद्धि शुद्धम् ।।५८।।

आनन्द रूप शुद्ध आत्मा ही उपादेय है ऐसी श्रद्धा निश्चय सम्यग्दर्शन है, उसी शुद्धात्मा को स्वानुभव के द्वारा शरीरादिक से पृथक अनुभव करना निश्चय सम्यग्ज्ञान है और चिन्ता का निरोध कर अत्यन्त तृप्ति के साथ उसी शुद्ध आत्मा मे अवस्थित होना निश्चय सम्यक् चारित्र है। भेद रत्नत्रय मे तत्पर तुम अपने स्वरूप को परम शुद्ध तन्मय समझो।

विरम विरम सङ्गान मुञ्च मुञ्च प्रपञ्चं
विसृज विसृज मोहं विद्धि विद्धि स्वतत्त्वम् ।
कलय कलय वृत्त पश्य पश्य स्वरूपं
कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्तहेतोः ।।५९।।

अनन्त मोक्ष सुख की प्राप्ति के लिए परिग्रह से विरत हो विरत हो, प्रपञ्चा का त्याग कर त्याग कर, मोह को छोड़ छोड़, आत्म तत्त्व को जान जान, चारित्र को धारण कर धारण कर, अपने स्वरूप को देख देख, और पुनः पुनः पुरुषार्थ कर ।

(ॐ ह्रीं व्यवहाररत्नत्रयैकसाध्याय निश्चयरत्नत्रयाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।)

येनान्योन्य-विरोध-वैरि-विसृजा शक्रादि-पूजा कृता

सौधर्माधिप-चक्र-पूर्वक-पदं श्रीमुक्ति—शर्मामृतम् ।

पायं पायमपायदूरमचलां भव्यां श्रियं प्राप्यते ।

तद्वश्चारु-चरित्र-रत्नमनिशं प्रद्योततां चेतसि ॥६०॥

जिस चारित्र के प्रभाव मे जाति–विरोधी जीव भी बैर–विरोध छोड़ देते हैं, इन्द्र पूजा करते है, बाद में जिस चारित्र के प्रसाद से सौधर्मादि स्वर्गों मे इन्द्रपद प्राप्त कर वहाँ से च्युत होकर यह जीव चक्रवर्ती की विभूति प्राप्त करता है वहाँ से फिर तपश्चारण कर मुक्ति सुख रुपी अमृत का पान करते हुए अविनाशी और अचाल सुन्दर मोक्ष–लक्ष्मी को प्राप्त करता है वह चारित्र रुपी रत्न सदा आप लोगों के चित्त मे प्रकाश करे।

तत्त्वार्थाभिनिवेश-निर्णयतपश्चेष्टामयीमात्मनः

शुधिं लब्धिवशाद् भजन्ति विकलां यद्यच्च पूर्णामपि ।

स्वात्माप्रत्ययवृत्ति तल्लयमयीं तद्भव्य-सिंह-प्रियं

भूयाद्वो व्यवहार-निचश्यमयं रत्न-त्रयं श्रेयसे ॥६१॥

जो काललब्धि पाकर व्यवहार से सात तत्त्वों का श्रद्धान, उनका ज्ञान और तपश्चरण रूप एक देश आत्मा की शुद्धि को प्राप्त करता है तथा जो निश्चय से आत्म श्रद्धान आत्म ज्ञान और आत्मलीनता रूप सम्पूर्ण आत्म शुद्धि को

प्राप्त करता है वह भव्य सिंह को प्यारा व्यवहार निश्चाय स्वरूप रत्नत्रय तुम्हारे कल्याण के लिए होवे ।

मोहमल्लममल्लं यो व्वजेष्ट निश्चय कारणम् ।
करीन्द्रं वा हरिः सोऽर्हन् मल्लिः शल्यहरोऽस्तु वः ६२

सिंह जिस प्रकार हाथी को जीत लेता है उसी प्रकार जिन्होने मोहरूपी सुभट को बडी आसानीसे जीत लिया है वे मल्लिनाथ अर्हन्त आपके दु.खो का विनाश करे ।

(इत्याशीर्वादः)